राष्ट्रीय एकता एवं साम्प्रदायिक सद्भाव के समर्थक
क्रांतिकारी देशभक्त मुसलमानों के जीवन-प्रसंग

क्रांतिकारी
देशभक्त मुसलमान

क्रांतिकारी देशभक्त मुसलमान

भरतराम भट्ट

साहित्य सहकार
दिल्ली-51

प्रकाशक की ओर से

काश ! पाकिस्तान के जनक कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्ना आज जीवित होते और यह देख पाते कि भारत के टुकडे कराकर साम्प्रदायिकता की कच्ची दीवार पर उन्होंने जिस मुस्लिम राष्ट्र (पाकिस्तान) का निर्माण कराया था वह भी एक नही रह सका। उसका पूर्वी हिस्सा अलग होकर बगला देश एक तीसरा राष्ट्र बन गया। वह यह भी देख पाते कि मुसलमानो की आजादी के नाम पर उन्होने जिस मुस्लिम राष्ट्र (पाकिस्तान) का निर्माण कराया था उस राष्ट्र की जनता को चौथाई शताब्दी तक जनरल अयूब और जनरल जिया उल हक जैसे अधिनायको की तानाशाही म गुलाम राष्ट्र से भी बदतर स्थिति मे रहना पडा।

मक्कार अग्रेजो ने जब यह भाप लिया कि उन्हे भारत छोडना ही पडेगा तो उन्होने हिन्दू मुसलमानो म साम्प्रदायिकता का विष घोलकर देश के दो टुकडे करा दिये। मुहम्मद अली जिन्ना और उनके समथक धर्मांध स्वार्थी मुस्लिम नेताओ के आगे राष्ट्रीय एकता के हिमायती मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे देशभक्त मुस्लिम नेताओ की एक न चली और देश का बटवारा हो गया।

भारत धर्म निरपेक्ष लोक तान्त्रिक गणराज्य के रूप म आज भी विश्व म अपनी साख बनाये हुए है, जहा सभी धर्मावलम्बियो को समान अधिकार प्राप्त हैं। इसका सबसे बडा प्रमाण यह है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से देश के राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर देशभक्त दो मुसलमान फखरुद्दीन अली अहमद और डा० जाकिर हुसैन आसीन रह चुके है। कुछ सिरफिरे लोग साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाकर कभी कभी हिन्दु मुसलमानो के बीच दगे कराते रहते हैं---जो देश और समाज के लिए घातक है।

इस पुस्तक में ऐसे देशभक्त मुसलमानों का जीवन चरित्र प्रस्तुत किया गया है जिन्होंने भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने के लिए अपने जीवन का बलिदान कर दिया—लेकिन कभी भी हिन्दु मुसलमान और मंदिर मस्जिद में भेद नहीं किया। ऐसे महान प्रेरणाप्रद जीवन प्रसंगों से वर्तमान और भावी पीढ़ी को राष्ट्रीय एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव की प्रेरणा निश्चय ही मिलेगी—ऐसी आशा है।

—मिश्रीलाल शर्मा

क्रम

मानवता एव देश-प्रेमी · शाह वली उल्ला

अंग्रेज और गैर भारतीय लेखक 1857 की क्रांति को गदर की सज्ञा तो प्रदान करते ही रहे हैं साथ ही उस क्राति को गाय और सूअर की चर्बी से युक्त कारतूसो के उपयोग के विरुद्ध भारतीय सैनिको की धार्मिक भावना उभारकर सैनिक विद्रोह कराने के षड्यन्त्र का भी आरोप लगाते रहे हैं, जो बिल्कुल निराधार है।

सचाई यह है कि जब अग्रेज-व्यापारियो ने सूरत, कलकत्ता मे व्यापार के निमित्त कोठिया खडी कर ली और भारत मे खरीदे गए कच्चे माल को बन्दरगाहो तक पहुचाने के लिए सुरक्षा का सवाल उठा तो उन्होने दो से पाच सौ के बीच गोरे सैनिक रखने की इजाजत उस समय के भारतीय शासको से ले ली थी।

बढते और फैलते व्यापार को अच्छी तरह व्यवस्थित करने मे जब गोरे सैनिक उन्हे कम लगे तो भारतीयो मे से भी उन्होने सैनिको की भरती की। इन सैनिको की सख्या अग्रेज सैनिको से अधिक थी क्योकि भारतीय सैनिक उन्हे काफी कम वेतन पर मिल जाते थे, जबकि गोरे सैनिको को भारतीयो की तुलना मे ज्यादा सुविधाए और वेतन देना पडता था, जिससे ईस्ट इडिया कम्पनी का व्यापारिक मुनाफा कम हो जाता था।

व्यापार तो बहाना था भारत को लूटने का। दरअसल भारत पर कब्जा करके अपनी सरकार कायम करना और सदियो तक शोषण के लिए इस देश को गुलाम बनाए रखना, ईस्ट इडिया कम्पनी और उसके मालिको का खास मकसद था। जब वे भारत की कई रियासतो पर अपनी चालबाजी और मक्कारी से कब्जा करने मे सफल हो गए तो फौज की तादाद बढाना लाजिम था, अत हिन्दु-मुसलमान—दोनो समुदायो के लोग उनकी सेना मे भरती हुए। इस तरह भारतीय फौज का

काफिला लम्बा हो गया।

लेकिन हिन्दु और मुसलमान, जो सेना मे थे, अपने मुल्क और सस्कृति के साथ गहरे जुडाव को देखते हुए, उन्हे देश और सस्कृति प्रेम की तरफ से काटना जरूरी था, ताकि वे देश भक्त की वजाय अग्रेज भक्त हो और उनके प्रति वफादार रहे। इस काम के लिए जरूरी था कि उनमे ईसाइयत का प्रचार और उन्हे ज्यादा-से ज्यादा ईसाई बनाया जाए। इस काम के लिए उन्होने अनेक अग्रेज पादरियो को फौज मे मेजर, कर्नल पद देकर ईसाइयत का वडी सतर्कता और गुपचुप ढग से प्रचार-प्रसार की सोची समझी योजना की शुरुआत की। कुछ समझदार हिन्दु और मुसलमान फौजियो को जब इस वात का अहसास हुआ और इस मामले मे जब अग्रेज तेजी से आगे वढने लगे, तव मई जून, 1857 की क्राति ने जन्म लिया।

इस वात को एक मुसलमान सत शाह अब्दुर रहीम ने वादशाह औरगजेव के शासनकाल मे सन् 18 7 से करीव 137 साल पहले सन 1719 से पूर्व ही भाप लिया था, जो दिल्ली के कूचा चेलान म अपने पूवजो के समय से स्थापित एक मदरसे मे शिक्षक का काम किया करते थे।

जब औरगजेव और शाह अब्दुर रहीम जिन्दगी के आखिरी पडाव पर थे, तब एक मौके पर शाह अब्दुर रहीम ने कहा था—'हालाकि वादशाह औरगजेव अपने जीवन मे निहायत पाक चरित्र और धार्मिक रहा है, फिर भी हिन्दुओ और शिक्षा वग के प्रति उचित न्याय न करने की उसकी नीति भारतवप के भविष्य और मुगल साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध होगी।'

सत शाह अब्दुर रहीम के विद्वान पुत्र शाह वली उल्ला ने सन 1719 मे अपने पिता की मृत्यु के वाद 17 साल की आयु मे मुसलमानो मे देश भक्ति के वीज वोने शुरू कर दिए थे। साथ ही अपने पिता के स्थान पर उसी मदरसे म पढाना भी। वह मात्र धर्म शिक्षक अथवा समाज-सुधारक नही थे वल्कि उस समय की भारतवर्ष की राजनीतिक स्थिति पर उन्होने गहरा चिन्तन, मनन करते हुए मुसलमानो मे राजनीतिक चेतना के जागरण के

साथ देश प्रेम की भावना उदय करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

अग्रेजो ने भारत के पूर्वी तथा पश्चिमी तटो पर अपने व्यापारिक सस्थान और बडे-बड भवन तो खडे कर ही लिए थे। लेकिन दूसरी तरफ फ्रासिसी डूमास ने भी बारह सौ यूरोपियनो और पाच हजार भारतीयो की सेना खडी कर ली थी और वही उस सेना का सेनापति भी था।

विद्वान् और देश-भक्त शाह वली उल्ला ने भारतीय मुसलमानो मे राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने के लिए छोटी-बडी कई पुस्तकें लिखी और उनमे एकता, देश-प्रेम तथा राजनीति को मुख्य विषय बनाया। अपनी एक पुस्तक—हुज्जतुल्ला हिल बालिगा' मे एक जगह वह लिखते है।

'यदि कोई कौम सास्कृतिक क्षेत्र मे लगातार उन्नति करती रहे, तो उसका कला कौशल श्रेष्ठता की चरम-सीमा तक पहुच जाता है। उसके बाद अगर शासक-वर्ग सुख और भोग विलास का जीवन व्यतीत करने लगता है तो उसका बोझ मजदूर-वर्ग पर इतना बढ जाता है कि समाज का बहुसख्यक भाग पशुओ जैसा जीवन व्यतीत करने पर मजबूर हो जाता है। ऐसी स्थिति मे मनुष्यता की सामूहिक सस्कृति नष्ट हो जाती है और जब बल या शक्ति के आधार पर उनको सामूहिक सकट सहने के लिए मजबूर कर दिया जाता है तो वे गधो व बैलो की तरह केवल पेट भरने के लिए मेहनत करते हैं।'

यह विचार उस व्यक्ति के हैं, जिसे न अग्रेजी-भाषा का ज्ञान था और न कार्ल मार्क्स का। क्योकि तब तक कार्ल-मार्क्स पैदा ही नही हुए थे। फिर इस तरह के क्रातिकारी विचार शाह वली उल्ला ने उस दिल्ली मे बैठकर व्यक्त किए, जहा उन्ही के सम्प्रदाय के लोग गद्दी पर विराजमान थे। लेकिन वह उसी हुकूमत के खिलाफ प्रचार करने मे व्यस्त थे।

उस समय दिल्ली शहर का मुख्य अधिकारी नजफ उल्ला खा था। जब शाह वली उल्ला के प्रवचन (उपदेश) की सूचना उसे मिली, तो वह आग बबूला हो गया और उसने शाह वली को

सबक सिखाने की सोची। लेकिन वह उनके ज्ञान और जन-सम्मान को देखते हुए डरता भी था। अधिकार, फौज और दूसरे साधन जिनसे वह भरपूर था, के होते हुए भी वह उन पर प्रत्यक्ष आक्रमण करने से घबराता था, अत उसने उन्हे चुपचाप ठिकाने लगाने की योजना तैयार की।

एक दिन जब शाम को शाह वली उल्ला अपने कुछ साथियो के साथ फतहपुरी मस्जिद मे नमाज अदा करने गए तो कुछ हथियारबन्द लोगो ने मस्जिद का मुख्य द्वार घेर लिया। नमाज के बाद जब उन्हें पता चला, तो वह पिछले दरवाजे से बाहर निकलने के लिए वहा गए, लेकिन उस दरवाजे पर भी कुछ हथियारबन्द लोग खडे थे।

शाह वली उल्ला और उनके साथियो ने उनसे पूछा—तुम लोग इस तरह लडने पर क्यो आमादा हो? और हमारा कसूर क्या है? तो वे बोले—हम सब मौलवी हैं। अब तक कुरान लिख, बेचकर रोटी खाते थे। तुमने (शाह वली) कुरान का तर्जुमा करके हमे रोटी से महरूम कर दिया है, इसलिए हम तुम्हे कत्ल करेंगे। शाह वली ने सब्र के साथ उन्हे समझाया कि धर्मग्रथ सबके लिए होता है, उसका फायदा आम आदमी को भी मिलना चाहिए, इसलिए कुरान का तर्जुमा करना गुनाह नही है। लेकिन उन्हे जान से मारने के लिए जैसे ही उन लोगो ने हथियार उठाए, शाह वली उल्ला और उनके साथियो ने भी अपनी तलवारे खीच ली। यह देख वे लोग भाग गए।

बाद मे शाह वली उल्ला को बताया गया कि वे नगराधिकारी नजफ उल्ला खा के आदमी थे, जो उसने उन्हे कत्ल करने के लिए भेजे थे। कुरान का तर्जुमा और मौलवी बताने की बात तो सिर्फ बहाना था। तो न्याय, सच्चाई (ईश्वर पर विश्वास), सयम और बाहर-भीतर से शुद्ध (पाक) रहना, उन पर अमल करना शाह वली उल्ला जिन्दगी के लिए जरूरी समझते थे। लेकिन राजनीति मे शासक कैसा हो? यह बात अपनी पुस्तक—'हुज्जतुल्ला हिल बालिगा' मे इस तरह कही है।

' मतलब यह कि इन्सानी समूह के लिए जिन्दगी बसर

करने के लिए हक दौलत बराबर-बराबर बहुत जरूरी है। हर इन्सानी समाज को ऐसी अर्थ-व्यवस्था दरकार होती है, जो उसको जीवनोपयोगी सामग्री देने की जिम्मेदार हो। मनुष्य और समाज आर्थिक-तौर पर सन्तुष्ट होने के बाद, अवकाश के समय जीविका के ठीक से चलने के बाद बची सामग्री (दौलत) से सभ्यता और सस्कृति की उन्नति की ओर अपना मार्ग प्रशस्त करता है। यही मानवता का वास्तविक रूप है।'

महान सन्त और राजनीतिक-चेतना के धनी शाह वली उल्ला ने इन्सान की आर्थिक-समता और सच्ची इन्सानियत का जामा अब से 250 साल पहले पहनकर देशवासियो को भी उस चेतना से अवगत कराया था।

भारत की एकता के सम्बन्ध मे अपनी पुस्तक—'बुदूरे बाज्मे गाह' मे वह लिखते हैं

'भारतवष मे छोटी-छोटी सरकारें हो सकती हैं, लेकिन उनका केन्द्र एक ही होना चाहिए, जिससे सारे भारतवर्ष की हानि लाभ की दृष्टि से विचार किया जा सके।'

साफ जाहिर है कि वह भारत की एकता के हिमायती होने के साथ ही प्रान्तो के रूप मे व्यवस्थित शासन-प्रणाली के द्वारा समाज को ज्यादा सुख देने के पक्ष मे थे। अपनी उसी पुस्तक मे वह लिखते हैं—'राज्य की ओर से सबके लिए कानून एक प्रकार के होने चाहिए। फिर चाहे लोग उनका पालन अपनी अपनी परम्परा के मुताबिक कैसे भी करें।'

यानी शाह वली उल्ला का आशय हिन्दु-मुसलमानो के लिए एक तरह के कानूनो से था और उनका पालन भी वह देखना, करवाना चाहते थे। जमय्यत-उल उलेमा की नीव उन्ही के द्वारा रखी गई थी। उन्होने सगठन को मजबूत बनाने और मुसलमानो मे मानवता तथा शोषण के विरुद्ध प्रचार के लिए एक शिष्य मडली भी तैयार की थी, जो जमीदार और आम मुसलमानो मे जाकर इन्सानियत, ईश्वर पर दृढ विश्वास का प्रचार करते थे। ऐसे लोगो मे मौलाना मुहम्मद आशिक फुलती, मौलवी नूर उल्ला बुढानवी और मौलाना मुहम्मद अमीन काश्मीरी आदि प्रमुख थे।

सही ढग से प्रचार और अमीर गरीव मुसलमाना मे इसानियत की मूल भावना पदा करने के कारण उनका सगठन 'वली उल्लाई' ताकतवर होता चला गया और तब उन्होने गुप्त रूप से एक स्थायी सरकार का गठन भी किया। यही सगठन वाद मे 'जमय्यत-उल-उलेमा' के नाम से जाना गया।

उन दिनो यानी औरगजेव की मृत्यु के वाद दिल्ली का सिंहासन डावाडोल था और उसे हासिल करने के लिए रोजाना षडयन्त्रो का एक न टूटने वाला माहौल वन गया था। शाह वली उल्ला इस सवसे दुखी और परेशान थे। लेकिन वह मौके की इन्तजार मे थे, अत अपने सहयोगियो और शिष्यो से धैर्यपूर्वक अपना काम करते रहने को कहा करते। वह तलवार के जोर पर नही, विचारो के वल पर शासन व सामाजिक परिवतन के पक्ष-धर थे। अहिंसात्मक ढग से जुल्म-ओ सितम के विरुद्ध प्रचार के लिए कलम के योद्धा सन्त, सुधारक और राजनीति को इसानियत का चोला पहनाने के दृढ सकल्पी शाह वली उल्ला की वैचारिक क्राति के खतरे को भापते हुए दिल्ली के मुख्य अधिकारी नजफ अली खा ने उनके हाथो के दोनो पजे बेकार करवा दिए, ताकि वह कुछ लिख ही न सकें।

इतना ही नही, उनके वेटो—शाह अब्दुल अज़ीज और शाह रफी उद्दीन—को देश निकाला की सजा देकर अपने राज्य की सीमा तक उन्हे पैदल चलवाया, फलस्वरूप लू लगने से शाह अब्दुल अजीज़ हमेशा के लिए अधे हो गए। दिल्ली के शासक द्वारा उनके साथ इतना कुछ किए जाने के वावजूद शाह वली उल्ला अपने पाक उसूलो से टस से मस नही हुए और अपनी भारी शिष्य-मडली और साथियो को बुराइयो, जुल्म से जूझने के लिए लगातार नैतिक वल प्रदान करते रह। सदियो मे पूरा होने वाला उद्देश्य एक ही जिन्दगी मे पूरा हो पाना मुमकिन न था। लेकिन सामाजिक शैक्षणिक और राजनैतिक चेतना की न वुझने वाली लौ जलाकर शाह वली उल्ला सन् 1793 मे खुद वुझ गए।

जानकारो का कहना है कि सन् 1914 18 मे 'रेशमी पत्रो का षडयन्त्र की नीव दरअसल मई, 1731 मे ही वन चुकी थी, जब शाह वली उल्ला ने वली उल्लाई सस्था को जन्म देकर जागरण का विगुल बजाया था। लोगो को अपने कर्तव्य तथा अधिकारो के वारे म सचेत किया था।

शाह अब्दुल अजीज हाजी इमदादुल्ला

शाह वली उल्ला द्वारा मई, 1731 मे स्थापित वली उल्लाई सम्प्रदाय या सगठन के उत्तराधिकारी, उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र शाह अब्दुल अजीज़ बने। लेकिन इस बीच भारत वर्ष के राजनैतिक हालात इतनी तेजी से बदल रहे थे कि देश-प्रेम की बात करना अपराध माना जाने लगा और ऐसे आदमी को कत्ल करवा देना या फासी पर लटका देना राज्य सत्ता को पाने, बहाल रखने के लिए बहुत जरूरी करार दे दिया गया था, इसलिए राजनैतिक एव सामाजिक जागरण के दूत शाह अब्दुल अजीज़, जिनको नज़फ अली खा ने बचपन मे ही अधा बना दिया था, को दो बार ज़हर दिया गया, फिर भी वह बच गए। तब छिपकली को तेल मे डाल और आग मे पका कर उस तेल से उनके बदन की मालिश करवा उन्हे कोढ रोग का शिकार बनाया गया।

यह सब होने के बावजूद शाह अब्दुल अजीज ने हिन्दुस्तान को दारुल हरब घोषित कर दिया। यानी ऐसा देश, जिसका शासन अमानवीय तरीके से काम कर रहा हो, तब सच्चा मुसलमान उस देश को छोडकर चला जाए या युद्ध लडकर शासन के रवैये को ठीक करे, बदले।

जाहिर है कि वह उन नवाब, दिल्ली सम्राट और अग्रेज-शिकजे के खिलाफ थे, जो देश को मनमाने ढग से चला रहे थे, लूट रहे थे। देश की मासूम जनता का खून पी रहे थे, उन्हे पशुओ की तरह बाधकर गुलाम बनाना चाहते थे। हिन्दुस्तान को उन्होने न केवल दारुल हरब करार दिया, बल्कि देश से अग्रेजो को निकालने के लिए अपनी सस्था को दो भागो मे बाटा। एक के जिम्मे देश मे घूम-घूमकर सैनिक तैयारियो का काम था और दूसरे के जिम्मे प्रचार विभाग, जो घूम-घूम कर अग्रेजो के

विरुद्ध आम जनता मे चेतना पैदा करता।

शाह् अब्दुल अजीज अपने पिता शाह् वली उल्ला के प्रारम्भ किए आदोलन को आगे बढाने के लिए कमर कसे हुए थे। लेकिन इसी बीच पजाब मे सिखो द्वारा मुसलमानो को खत्म करने की अफवाह् फैलाकर उनके आदोलन को धार्मिक-उ माद की ओर मोड दिया गया, जिससे सैनिक सगठन मे जुटा उनका एक विश्वस्त साथी सय्यद अहमद गुमराह् होकर हज के लिए चला गया। अग्रेजो और अय्यास नवाबो के विरुद्ध चलाया जाने वाला आदोलन विकृत हो गया और सन् 1824 मे शाह् अब्दुल अज़ीज़ का भी देहान्त हो गया।

उनकी वसीयत के मुताबिक उन्हे गाढे (खद्दर) का कफन ओढाकर सादगी के साथ दफना दिया गया। आजादी की मशाल जलाकर यह् देश भक्त सदा के लिए चला गया।

वली उल्लाई की शृ खला मे शाह् मुहम्मद इसहाक तीसरे देशभक्त क्रातिकारी नेता थे, जो रिश्ते मे शाह् अब्दुल अज़ीज़ के धेवते थे। जिस समय शाह् मुहम्मद इसहाक ने नाना की जिम्मे दारी सभाली थी, उस समय सम्राट शाह् आलम दुनिया से जा चुके थे, उन्हे अग्रेजो ने सन् 1803 से ही कैद मे डाल रखा था। उसका बेटा अकबर शाह् दिल्ली के सिहासन पर आयद हो चुका था। लेकिन दिल्ली की सल्तनत शायद इसकी चौहद्दी तक सीमित होकर सिकुड चुकी थी।

इस बात का अनुमान इस घटना से लगता है—जब सम्राट अकबर शाह् ने वारेन हेस्टिग्स को दिल्ली दरबार मे उपस्थित होने का आदेश दिया तो उसने यह कहा था—"मैं सम्राट से मुलाकात करते समय ऐसी किसी मर्यादा का पालन नही करना चाहता, *जिससे यह प्रमाणित हो कि दिल्ली का सम्राट ईस्ट* इडिया कम्पनी का भी सम्राट है।"

हेस्टिग्स ने अपने रोजनामचे मे 22 जनवरी 1815 को लिखा था

"हमारा यह मान लेना कि दिल्ली सम्राट हमारा सम्राट है, एक ऐसे वजूद को मानना है, जिसके झडे के नीचे चारो ओर

के मुसलमान कभी भी जमा हो सकते है। ऐसा करना खतरनाक है।"

शाह मुहम्मद इसहाक जिन दिनो वली उल्लाई गद्दी पर बैठे, उन्ही दिनो लार्ड हेस्टिंग्स की जगह एडम्स और कुछ दिनो बाद लार्ड एमहर्स्ट भारत के गवर्नर जनरल बनाए गए और उसने आते ही स्वतन्त्र राज्य बर्मा से युद्ध की घोषणा कर दी।

उधर शाह अब्दुल अज़ीज़ का सेना सगठक सय्यद अहमद बरेलवी हज से वापस आया। उसने शाह मुहम्मद इसहाक को अपना गुरु तसलीम किया। साथ ही दो हजार फौजी भी तैयार किए, जिन्हे साथ लेकर वह काबुल पहुचा। जनवरी, 1827 मे पठानो ने उन्हे अपना शासक मान लिया और उस अस्थाई सरकार के शाह इसहाक से सम्बन्ध भी कायम हो गए। लेकिन भारतीय मुसलमानो की पठानो के साथ बेटी व्यवहार पर खटक गई। बेचारे सय्यद अहमद को पठानो से दो-चार होना पडा। मई, 1831 मे सिख सेनापति हरीसिह नलवा के साथ बालाकोट के युद्ध मे उन्हे अपने प्राण गवाने पडे।

सय्यद अहमद के इस तरह समाप्त होने के बाद शाह मुहम्मद इसहाक को काफी निराशा हुई और वह भारत से अग्रेजो को निकालने के लिए टर्की सरकार से सम्पक करने की इच्छा से सन 1841-42 मे हज के बहाने मक्का चले गए। वहा पहुचते ही उन्होने टर्की सरकार से सम्बन्ध कायम कर लिए। जैसे ही अग्रेजो को इस बात का पता चला, उन्होने उन्हे टर्की से निष्कासित करवाने के लिए वहा की सरकार पर दबाव डाला। अन्तत हेजाज़ प्रान्त के प्रभावशाली व्यक्ति शेख अकरम के कहने-सुनने पर शाह मुहम्मद इसहाक को हेजाज मे रहने की अनुमति दे दी गई, लेकिन इस शत पर कि वह टर्की सरकार की राजनीति मे किसी तरह का दखल नही देगे।

उधर हेजाज मे शाह मुहम्मद इसहाक निर्वासित जीवन गुजार रहे थे। इधर दिल्ली का वह मदरसा मौलाना ममलूक अली की सरपरस्ती मे अपने काम को सही नीयत से कर रहा था। यद्यपि ममलूक अली उस कदर क्रातिकारी प्रवृत्ति के नही

थे, जैसा कि मदरसा को चाहिए था फिर भी दिल्ली के अरेबिक कालेज मे उनके नौकरी करने की वजह से मदरसा सरकारी गुस्से से बचा था।

कुछ दिनो बाद शाह मुहम्मद इसहाक ने ममलूक अली की जगह हाजी इमदाद् उल्ला को मदरसे का अध्यक्ष बना दिया और उनके सहायको के रूप मे शाह अब्दुल गनी देहलवी, मौलाना मुहम्मद कासिम और हाजी रशीद अहमद गगोही को नियुक्त कर दिया। सन 1846 तक वह जिन्दा रहे। उनके रहते मदरसा क्राति के रास्ते पर ही रहा। शाह मुहम्मद इसहाक की मौत के बाद हाजी इमदाद्-उल्ला ने वलो उल्लाई सगठन की बागडोर सभाली।

सन् 1823 और 1846 के बीच के 23 वर्षो मे अग्रेजो ने करीब सारे भारत को अपने शासन मे कर लिया था और देश जिस दशा तथा जैसी हीनता की सीमा पर था, उसका अन्दाज मद्रास सुप्रीम कोर्ट और कौन्सिल के जज, सदस्य तथा किसी पुस्तक की भूमिका लिखने वाले मि० मैल्कम लुइन के शब्दों द्वारा आसानी से लगाया जा सकता है।

'समाज के सदस्यो की हैसियत से हम दोनो (अग्रेज और भारतीय) एक दूसरे से अनजान हैं। हमारा आपसी सम्बन्ध वही है जो गुलाम और मालिक के बीच होता है। हमने हर उस चीज पर अपना अधिकार जमा लिया है, जिससे देशवासियो का जीवन सुखवाला बन सकता था। हर वह बात, जो देशवासियो को समाज में उभार सकती थी या मनुष्य की हैसियत से उठा सकती थी, हमने उनसे छीन ली है। हमने उन्हे जाति भ्रष्ट कर दिया है। उनके उत्तराधिकार नियमा को रद्द कर दिया है, उनकी विवाह परम्परा (सस्था) को बदल दिया है। उनके धर्म के पवित्र से पवित्र रीति-रिवाजो की उपेक्षा की है। हमने उनके मन्दिरो की जायदादें जब्त कर ली हैं। हमने सरकारी उल्लेखो मे उन्हे हीदन (काफिर) कहकर अपमानित किया है। उनके नरेशो के राज्य, अमीरो-रईसों की सम्पत्तिया छीन ली हैं और अपनी लूट-खसूट से इस देश को बर्बाद कर दिया गया है। लोगो को सता-

सताकर मालगुजारी वसूल कर रहे है। हमने ससार के सबसे ऊचे या उच्च कुलो को निर्मूल कर देने और उन्हे पतित बनाकर पैरिया (अधिकार हीन गुलाम) की शक्ल मे खडा कर दिया है।'

यह थी सन् 1823 46 के बीच भारतवर्ष की तसवीर। इतना ही नही, उन्ही दिनो अग्रेजो ने 16 हजार सेना लेकर अफगानिस्तान पर भी हमला किया था। लेकिन एक व्यक्ति डॉ० ब्राइडन को छोड अग्रेजो की शेष सेना वहा खत्म कर दी गई थी।

वली उल्लाई सगठन के चौथे नेता हाजी इमदाद-उल्ला सन् 1846 के बाद उस चेतना को जगाए रखने के काम मे जुटे, जो शाह वली उल्ला ने जागृत की थी। ये वे दिन थे, जब पजाब मे महाराजा रणजीत सिंह काबिज थे। हालाकि पहले वह काबुल के एक सामन्त मात्र थे। लेकिन बाद मे शक्तिशाली होने पर उन्होने अपने आपको पजाब का स्वतन्त्र शासक घोपित कर दिया।

दुख इस बात का है कि अग्रेजो के अफगानो से बुरी तरह परास्त होने, अग्रेजो की 16 हजार फौज का मूली गाजर की तरह काटे जाने और पजाब मे रणजीत सिंह का दबदबा होने के बावजूद भारतीयो की आपसी फूट अग्रेजो को भारत से खदेडने मे आडे आई। जबकि 1823-46 के दौरान जन-जागरण के लिए कुछ पत्र-पत्रिकाए भी मैदान मे थी।

इधर सन् 1837 मे दिल्ली के नाममात्र सम्राट् अकबरशाह की मृत्यु और बहादुरशाह जफर के दिल्ली सिंहासन पर बैठने के बाद वह अपना गुजारा भत्ता बढवाने के लिए उन्ही अग्रेजो के आगे गिडगिडाए, जिन्हे उनके पूवज सम्राट जहागीर ने हिंदुस्तान मे व्यापार करने की इजाजत दी थी।

उधर वली उल्लाई सस्था के हाजी इमदाद-उल्ला भारत से अग्रेजो को बाहर निकालने की मुहिम मे जुटे थे। हाजी इमदाद् उल्ला ने मुसलमानो को अग्रेजो के खिलाफ करने के लिए हजारो पुस्तिकाए बटवाई, जिनमे अग्रेज कौम के घटियापन और मक्कारी का जिक्र था। दिल्ली के कूचाचेलान के मदरसे से

सैकडो नौजवान छात्र अंग्रेजो के विरुद्ध प्रचार के लिए जगह-जगह व्याख्यान देते फिर रहे थे।

अंग्रेजो की शक्ल से भी हाजी इमदाद्-उल्ला को सख्त नफरत थी। वह उन्हे बिलौटा, फिरगी जैसे नामो से पुकारते थे। सन 1846 मे वली उल्लाई क्राति की मशाल सभालनेवाले इमदाद्-उल्ला सिर्फ दस साल बाद सन् 1857 की क्राति के दरवाजे पर दस्तक देने लगे और शामली के मोर्चे पर अग्रजो से तब तक बहादुरी से लडते रहे, जब तक पजाब के सिख और देश के अन्य राजा नवाबो ने अंग्रेजो के साथ मिलकर अपने विश्वासघात को प्रकट नही कर दिया।

हाजी इमदाद उल्ला जितने अच्छे विद्वान चितक एव लेखक थे, उतने ही बडे तलवारबाज योद्धा भी थे। वह देश की आजादी के लिए लडे थे दिल्ली मदरसे के सकडो छात्र सहयोगियो के साथ। अंग्रेजो की नजर मे कूचा चेलान का वह मदरसा बुरी तरह अखरने लगा था, जो क्राति के बीज पैदा कर हिंदुस्तान की धरती पर बो दिया करता था। इसके बाद हाजी इमदाद् उल्ला मक्का चले गए और उनके साथी नेतृत्व के अभाव मे बिखर गए।

यही कारण है कि दिल्ली पर अंग्रेजो का अधिकार होने के बाद कूचा चेलान को नष्ट भ्रष्ट तथा श्मशान बनाने मे अंग्रेजो ने कोई कमी नही छोडी। बल्कि एक ऐसा नजारा पेश किया था कि कूचा चेलान से उन दिनो गुजरता हुआ नावाकिफ इसान दहशत मे डूबकर वही गर्क हो जाए। ऐसा दर्द भरा, खौफनाक और बे-रहम बर्ताव था वह अंग्रेज कौम की सभ्यता का।

महान् क्रातिकारी
मौलाना मुहम्मद-उल-हसन

देवबन्द के दारुल उलूम से शिक्षा प्राप्त शेख मुहम्मद-उल-हसन, जो प्रतिभाशाली तथा देश-भक्त थे, सन् 1874 मे वही अवैतनिक शिक्षक के रूप मे पढाने लगे। एक साल बाद यानी सन् 1875 मे उन्हे 25 रुपए मासिक वेतन दिया जाने लगा। इनके पिता श्री जुल्फीकार अली खा भी मदरसे के सस्थापको के सहयोगियो मे से एक थे।

सन् 1878 मे देवबन्द मदरसे के सस्थापक मौलाना मुहम्मद कासिम की मृत्यु के बाद यहा के छात्रो ने यही 'समरतुल तर्बियत' सगठन को जन्म दिया, लेकिन अग्रेज-राज रूपी सूर्य की भीषण गर्मी को सहन न कर पाने के कारण यह सगठन कुछ अरसे बाद समाप्त हो गया और कुछ ठोस कार्य न कर पाया।

सन् 1884 मे शेख मुहम्मद-उल-हसन देवबन्द दारुल-उलूम के प्रधानाध्यापक के पद पर आसीन हुए। यह वह समय था, जब देश मे कई राजनैतिक सगठन कार्यरत थे और एक अखिल भारतीय राष्ट्रीय सगठन बनाने के प्रयास चल रहे थे। एक साल बाद यानी 1885 मे भारतीय राष्ट्रीय युनियन का एक अधिवेशन भी 28 दिसम्बर को बम्बई मे सम्पन्न हुआ।

इस समय तक देवबन्द का दारुल उलूम (मदरसा) अच्छी मशहूरी हासिल कर चुका था। यद्यपि सर सय्यद अहमद खा और उनके सहयोगी इस मदरसे का काफी विरोध कर रहे थे, फिर भी वह दिन-ब दिन तरक्की कर रहा था।

सन् 1905 मे बग भग की अग्रेज साजिश ने हिन्दुओ मे एक जागृति की लहर पैदा की। मौलाना मुहम्मद-उल हसन इस जागृति को हिन्दु मुस्लिम सयुक्त जागृति के रूप मे उठाना

चाहते थे। इसी मौके पर दारुल-उलूम मे एक ऐसा छात्र पहुचा जो सिख मे मुसलमान बना था। वह इस्लाम के प्रति आसक्त था। उसका नाम था—उबेदुल्ला सिन्धी।

उबेदुल्ला सिन्धी ने कुछ ही समय बाद दारुल उलूम के प्रधान-अध्यापक मौलाना मुहम्मद-उल-हसन का दिल जीत लिया और वह उनके अति विश्वासपात्रो मे से एक हो गया। उन्होंने उबेदुल्ला सिन्धी को तत्कालीन राजनीति के बारे मे भी अच्छी तरह परिचित कराया। साथ ही पिछला इतिहास भी अपने होनहार छात्र को बताया।

उबेदुल्ला सिन्धी उनके छात्र होते हुए प्रमुख सहयोगी और विश्वसनीय सगठक बन चुके थे। मौलाना मुहम्मद उल हसन ने सन् 1909 मे दारुल-उलूम के पुराने छात्रो का एक सगठन तैयार किया, जिसका नाम रखा गया—'जमय्यतुल अन्सार'। दरअसल यह समरतुल तबियत का ही पुनर्जन्म था। देवबन्द का दारुल उलूम अब तक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति तक पहुच गया था और तुर्की, ईरान तथा अफगानिस्तान आदि देशो के सैकडो विद्यार्थी यहा इस्लामिक-शिक्षा हासिल करने के लिए आने लगे थे। इस प्रकार इस दारुल उलूम के विद्वानो, शिक्षको की चर्चा दूर दूर तक होने लगी थी।

जमय्यतुल असार सगठन इस काम मे और भी कारगर सिद्ध हुआ। सगठन को सुदृढ और व्यापक बनाने का काम उबेदुल्ला सिन्धी को सौपा गया। यानी वह इस सगठन के प्रधान बनाए गए। देवबन्द मदरसे की 40 शाखाए मुल्क मे जहा-तहा स्थापित हो चुकी थी। लेकिन प्रत्यक्ष रूप से लोग ऐसा नही समझते थे।

जमय्यतुल असार का प्रथम अधिवेशन 15, 16 व 17 अप्रल 1911 को मुरादाबाद मे हुआ था। इस अवसर पर दारुल उलूम के एक पूर्व छात्र-सदस्य मौलाना अहमद हसन मुहद्दिस ने जमय्यतुल असार के बारे मे कहा था

'आज नई रोशनी के सौदाई कहते हैं कि जमय्यतुल असार ओल्ड बायज़ ऐसोसिएशन की नकल है, लेकिन यह बात हर्गिज भी सही नही। 'जमिय्यतुल असार' की तहरीक गालिबन आज

से तीस साल पहले शुरू हो गई थी और इस तहरीक के बानी (प्रणेता) मदरसे आलिया के वह तालिबइल्म थे, जो आज उलूम के सर चश्मा हैं और आफताबे फ़नून है और जिनकी जात बाबरकात पर आज जमाना जिस कदर नाज करे, बजा है। लेकिन यह तहरीक उस वक्त जरूरयाते जमाना से मुताल्लिक न थी, इसलिए रुक गई।'

इस तरह यह बात साफ है कि वे भारत को अग्रेजो के खूनी पजो से छुडाने को बेचैन थे। लेकिन अग्रेज हकूमत भी उनके इरादो से वाकिफ थी। देवबन्द दारुल उलूम की सी० आई० डी० करने के इन्तजाम सन् 1910 मे उन्होने यो कराया कि जब दारुल उलूम का दीक्षान्त समारोह हो रहा था, जिसमे करीब 30 हजार मुसलमान मौजूद थे, उनमे एक रईस साहबजादा आफताब अहमद खा ने एक प्रस्ताव रखा कि हर साल दारुल-उलूम के छात्रो का एक दल अलीगढ मुस्लिम कालेज और वहा का एक दल यहा यानी देवबन्द आया जाया करेगा और शिक्षा का आदान-प्रदान किया करेगा।

प्रस्ताव पास हो गया और जब अलीगढ मुस्लिम कालेज के छात्रो का दल धार्मिक शिक्षा के देवबन्द आया तो उसका एक सदस्य अनीस अहमद सरकारी गुप्तचर बनकर यहा की हलचलो, कार्यों की गुप्त रिपोर्टें अग्रेज अधिकारियो को भेजता रहा, जिसके परिणामस्वरूप उसे पुरस्कार के रूप मे सी० आई० डी० विभाग का सुपरिटेंडेंट बना दिया गया। जिस व्यक्ति ने उक्त प्रस्ताव रखा था, वह राज-भक्त था, फिर भी न जाने मौलाना महमूद उल-हसन और उनके सहयोगी कैसे उक्त प्रस्ताव को क्यो रोक न पाए।

सन् 1913 मे मौलाना मुहम्मद-उल-हसन ने दिल्ली मे भी एक मदरसा स्थापित किया, जिसका नाम 'बजारुतुल मआरिफ' था। मौलवी उबेदुल्ला सिन्धी इसके अध्यक्ष नियुक्त किए गए थे। इस मदरसे का उद्देश्य मुसलमान युवको को राजनीति की शिक्षा देना था। इस मदरसे के सहायको मे डा० असारी और हकीम अजमल खा प्रमुख थे। ये दोनो सज्जन आजादी के लिए

मघर्ष करने वालो मे अग्रगण्य प्रमाणित हुए तो मौलाना मुहम्मद उल-हसन भारत से अग्रेजो को खदेडने के लिए अलग-अलग मोर्चा पर विभिन्न तरीको से सघर्परत थे।

मौलाना-उल-हसन ने भारत से अग्रेजो को निकालने के लिए विप्लवकारी योजनाए तैयार की। इसी सिलसिले मे उन्होने मौलवी उवेदुल्ला सिन्धी को काबुल भेजा। उवेदुल्ला सिन्धी ने अपने एक लेख मे कहा है—मेरे सामने कोई मुफस्सिल प्रोग्राम नही था, लेकिन शेख उल-हिन्द का हुक्म था, जिसे तामील करना मेरे लिए जरूरी था।

वे आगे कहते है कि जब मैंने अपनी काबुल यात्रा की बात दिल्ली की सयासी जमात को बताई, तो उसने भी अपना एक नुमाइ दा काबुल जाने को तयार किया, लेकिन कोई माकूल प्रोग्राम वे भी न बता पाए। फिर भी जब मैं अफगानिस्तान पहुचा तो वहा मौलाना मुहम्मद-उल हसन की जमात के लोग बिखरे पडे थे। शायद उन्ही को सगठित करने का काम मेरे जिम्मे था।

वहा वली उल्लाई सगठन के करीब पचास लोग वर्षो मे राजनैतिक चेतना जगाने मे व्यस्त थे। मौलवी उवेदुल्ला सिन्धी कहते हैं—'शाह अमानुल्ला को तख्त पर लाने मे शेख उल-हिन्द (मौलाना मुहम्मद-उल-हसन) का बहुत बडा हाथ था।' दरअसल देववन्द के दारुल-उलूम से जो सरहद और अफगानी छात्र पढ-लिखकर वहा पहुचे, वे राजनैतिक चेतना लेकर गए थे, इसलिए अमीर हवीबुल्ला खा के विरुद्ध उनके दिल-दिमाग मे नफरत थी क्योकि हबीबुल्ला खा ने विदेश नीति को नपुसक बना दिया था। वस्तुत सन् 1880 मे हबीबुल्ला खा के पिता अमीर अब्दुर्रहमान अग्रेजो की मदद से काबुल के तख्त पर बैठे थे। उन्होने अमीर अब्दुर्रहमान से यह करार करवा लिया था कि काबुल की विदेश नीति पर अग्रेजो का अधिकार होगा। यह बात उन अफगान युवको को पसन्द न थी, जो देवबन्द मदरसे से राजनैतिक चेतना के साथ धार्मिक शिक्षा लेकर गए थे।

अक्तूबर, 1915 मे मौलवी उवेदुल्ला सिन्धी काबुल पहुचे।

उससे एक वर्ष पूर्व यूरोप का प्रथम विश्व-युद्ध शुरू हो चुका था, अत अंग्रेज सरकार भारत मे राजनैतिक गतिविधियो को गौर से देख रही थी। इसी बीच मौलवी अब्दुल हक-हक्कानी ने अंग्रेजो के समर्थन मे एक फतवा दिया। जब मौलाना मुहम्मद-उल-हसन से इस फतवे पर दस्तखत करने को कहा गया तो उन्होने उस पर दस्तखत करने से साफ इनकार कर दिया। सचाई तो यह थी कि उन्होने अंग्रेजो के विरुद्ध लडने के लिए एक क्रातिकारी समिति गठित कर रखी थी, जिसके सदस्य थे—मौलवी उबेदुल्ला सिन्धी, मौलाना मुहम्मद मिया असारी, मौलाना हमदुल्ला पानीपती, श्री जहूर अहमद रुडकी।

प्रथम तो अंग्रेज देवबन्द दारुल उलूम को ही शक की निगाहो से देखते थे और उसके सर्वेसर्वा होने के नाते मौलाना मुहम्मद-उल-हसन को तो और भी ज्यादा शक की नजरो से देखते थे, अत जब उन्होने अंग्रेजो के समर्थन और तुर्की के विरुद्ध अंग्रेज हमले के समर्थन मे जारी फतवे पर दस्तखत नही किए तो उनकी गिरफ्तारी निश्चित समझी जाने लगी।

काबुल से उनके सम्पर्क कायम हो चुके थे। वह टर्की से भी सम्पक साधकर और इन मुल्को की मदद से अंग्रेजो को भारत से निकालने का निश्चय कर चुके थे। अंग्रेज उनकी गतिविधियो पर नजर रखे हुए थे, इसलिए उन्होंने भारत से बाहर जाना ही बेहतर समझा। सितम्बर, 1915 मे उन्होने टर्की जाने का पक्का इरादा बना लिया।

देश से बाहर जाने के लिए हज का बहाना सबसे बेहतर बहाना था, अत यह प्रचार किया गया कि मौलाना मुहम्मद-उल हसन हज करने मक्का जा रहे हैं। मक्का जाते समय बम्बई तक हर स्टेशन पर हजारो की भीड उनको विदाई देने के लिए मौजूद थी। बम्बई मे जहाज पर चढते समय उनके हजारो समथक वहा आए हुए थे। भारत की अंग्रेज सरकार परेशान थी कि मौ० मुहम्मद उल हसन को कसे गिरफ्तार किया जाए क्योंकि उन्हे पकडने का मतलब था मुसलमानो के एक बहुत बडे वर्ग को नाराज करना। बम्बई मे जहाज पर चढने से पहले उन्हें

गिरफ्तार करने की योजना थी, लेकिन वहा उनके हजारो समर्थको मे खूनी सघर्ष होने का खतरा था, अत वह जहाज पर चढे और मक्का के लिए रवाना हो गए। उनके जाने के बाद जहाज के कप्तान को उन्हें गिरफ्तार करने का आदेश दिया गया, लेकिन जब तक उसे आदेश मिला, तब तक मौ० मुहम्मद-उल-हसन जहाज से उतर कर जा चुके थे।

मौलाना मुहम्मद उल हसन के साथ यात्रा के दौरान पचासो लोग थे। बताया जाता है, उनमे से ज्यादातर अग्रेज हकूमत के गुप्तचर थे, अत मक्का पहुचने के बाद गुप्तचरो के निर्देश पर टर्की सरकार द्वारा उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया। उनसे हिरासत मे ही हज की रस्म अदा करवाई गई। फिर भी कई अग्रेज गुप्तचर उनके साथ रह गए।

मक्का पहुचने पर उनकी मुलाकात हेजाज प्रात के गवर्नर गालिब पाशा से हुई। इस मुलाकात मे उन्हे कोई दिक्कत नही आई क्योकि देवबन्द मदरसे के कुछ सही लोगो ने मौलाना मुहम्मद-उल हसन के बारे मे उन्हे (गवर्नर को) बहुत कुछ बता दिया था। गवर्नर गालिब पाशा ने गमजोशी से मौलाना मुहम्मद उल हसन का स्वागत किया और एक खत मदीना के गवर्नर के नाम दिया, जिसमे उनको हर तरह की मदद देने की बात लिखी थी। इस पत्र मे टर्की के रक्षामत्री से भी मुलाकात करवाने की बात लिखी थी। कुछ पत्र टर्की की राजधानी इस्तम्बूल के अधिकारियो के नाम थे तथा एक पत्र वह भी था, जिसका रौलेट कमेटी की रिपोर्ट मे गालिबनामा के नाम से उल्लेख था।

जब मौलाना मुहम्मद उल हसन मदीना पहुचे तो उन्होने वहा के गवर्नर बसरी पाशा से भेंट की। जो पत्र हेजाज के गवर्नर गालिब पाशा ने बसरी पाशा के नाम दिए थे, वे उन्हें सौंपे। मदीना मे कुछ पजाबी मुसलमान मौ० मुहम्मद उल हसन के साथ थे, मदीना की पुलिस को कही से यह सूचना मिली कि वे ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर हैं और टर्की के गुप्त रहस्यो की जानकारी करने के लिए मुहम्मद उल हसन के साथ आए हुए हैं। पजाब के मुसलमानो को गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन

मौलाना-उल-हसन ने अपने एक मित्र के आग्रह पर वहा के गवर्नर बसरी पाशा से कहकर उन्हें मुक्त करवा दिया।

गवर्नर बसरी पाशा को मौलाना का यह कार्य अच्छा नही लगा। मदीना के पुलिस कमिश्नर ने तो मौलाना के इस काम को अपने काम मे खुला हस्तक्षेप माना। बाद मे उनके साथियो द्वारा मौलाना को लिखे कुछ पत्र भी टर्की सरकार के सेंसर विभाग ने पकडे और इस तरह मौलाना मुहम्मद-उल हसन पूरी तरह शक के घेरे मे आ गए। फिर भी टर्की के रक्षा मंत्री अनवर पाशा से मुलाकात की उम्मीद मे वह वहा ठहरे रहे। लेकिन बसरी पाशा उन्हें अनवर पाशा से मिलवाने मे बराबर टालमटोल करता रहा।

कुछ समय के बाद रक्षा मत्री अनवरपाशा किसी आवश्यक कार्य से मदीना आए। मौलाना मुहम्मद-उल हक की अनवरपाशा से मुलाकात हो गई। अनवरपाशा ने उन्हे आजाद कबीलो मे जाने की सलाह दी। अनवरपाशा खुद भी टर्की की यग टर्क पार्टी से सम्बद्ध थे। मौलाना हिन्दुस्तान होकर आजाद कबीलो मे जाने से इसलिए डर रहे थे कि उन्हे अपनी गिरफ्तारी की पूरी आशका थी। इसी बीच मौलाना हादी हुसैन हिन्दुस्तान आ रहे थे अत अनवरपाशा ने आजाद कबीलो के नाम एक पत्र उन्हें दिया, जिसे लकडी के सन्दूक के तख्तो के बीच रखकर वह हिदुस्तान के लिए रवाना हुए। बम्बई पहुचते ही उनकी जबर्दस्त तलाशी ली गई। सन्दूक का एक एक तख्ता उखाड फेंका गया, लेकिन वह खत न मिला। अगले दिन पुलिस उनके मकान पर पहुची और उस सन्दूक की एक एक लकडी चीर डाली गई लेकिन वह खत फिर भी न मिला।

इस सबके बावजूद भी वह खत आजाद कबीलो मे पहुचा और उसकी नकल कराकर हिदुस्तान मे भी बाटी गई। यह काम मौलाना मुहम्मद मिया असारी ने पूरा किया था। मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी काबुल मे पहले से ही थे। इस तरह हम पाते है कि सन् 1719 मे स्थापित वली उल्लाई सगठन टर्की, अफगानिस्तान और ईरान तक अपनी जडे फैलाए हुए था।

अस्थायी स्वतन्त्र भारत सरकार की काबुल में स्थापना होना, इस बात के पक्के प्रमाण हैं।

कुछ दिनो बाद मौलाना मुहम्मद-उल-हसन मदीना से फिर मक्का लौट आए। उन्होने यहा आकर हदीस पढाना शुरू किया। विद्वानो मे उनकी इज्जत और मशहूरी दोनो ही बढी। लेकिन कुछ उनके शत्रु भी बने। इसी बीच मक्का के स्थानीय शासन के हाकिम शरीफ हुसैन ने टर्की सरकार से विद्रोह करके अंग्रेजो से दोस्ती कर ली। मौलाना मुहम्मद उल-हसन समझ गए कि अब मक्का मे रहना खतरे से खाली नही है। वह वहा से निकलना चाहते थे, लेकिन साधनो के अभाव मे ऐसा नही कर पाए।

जो शक था, वह कुछ ही दिनो मे साफ हो गया। एक दिन शरीफ हुसैन के एक प्रतिनिधि ने मौलाना मुहम्मद उल-हसन को आकर बताया कि आपके विरुद्ध अंग्रेजो को बहुत शिकायतें हैं। उस समय वह पढा रहे थे, कुछ पढने वालो को उस प्रतिनिधि की बात सुनकर गुस्सा आ गया। काफी गर्मागर्मी हो गई। बाद मे मौलाना मदनी के आने पर बात रफादफा हुई।

उसी मौके पर खान बहादुर मुबारक अली मक्का पहुचे और उन्होने शरीफ हुसैन को अंग्रेज सरकार का प्रतिनिधि बताकर उसके समर्थन मे मदीना मक्का के मौलवियो का फतवा मागा जिसे वह हिन्दुस्तान के मौलवियो के नाम जारी करवाना चाहते थे। शरीफ हुसैन ने मदीना मक्का के मौलवियो के दस्तखतो वाला फतवा मगवा कर उन्हे दे दिया। उसे देखकर वह बोले—इस फतवे पर मौलाना मुहम्मद-उल-हसन के भी दस्तखत करवा दीजिए।

जब फतवा का कागज मौलाना मुहम्मद उल हसन के पास दस्तखत कराने के लिए भेजा गया तो वह बोले—"इस फतवे का शीर्षक, 'मक्का-मदीना के मौलवियो की तरफ से' है और मैं मक्का-मदीना का मौलवी नही हू, इसलिए इस फतवे पर मेरे दस्तखत जरूरी नही हैं।

इसके बाद उन्होने साफ-साफ शब्दो में कहा, "मैं इस फतवे पर दस्तखत कैसे कर सकता हू, क्योकि मैं तो इस फतवे की निंदा

करता हू। अंग्रेज बदनीयत, मक्कार कौम है, फिर उनका समर्थन कैसा ?"

मौलाना मुहम्मद उल-हसन द्वारा फतवे पर दस्तखत करने से इन्कार करने के कारण मक्का के शेख-उल इस्लाम बेहद खफा हो गए क्योंकि फतवे पर उनके भी दस्तखत थे। मौलाना मुहम्मद उल-हसन द्वारा दस्तखत न करना उन्होने अपनी इज्जत पर हमला माना और मक्का का शासक, जो अंग्रेजो का पिट्ठू बन गया था, के कानो मे मौलाना मुहम्मद-उल-हसन के खिलाफ न जाने क्या-क्या कहा।

उक्त घटना के दो दिन बाद शरीफ हुसैन को जद्दा बुलाया गया। उस समय जद्दा मे अंग्रेज कर्नल विल्सन सर्वोच्च अधिकारी था। शरीफ हुसैन के जद्दा पहुचते ही उसी शाम को मक्का के अधिकारियो को हुक्म दिया गया कि मौलाना मुहम्मद-उल-हसन को गिरफ्तार कर लिया जाए और उनके साथियो सहित उन्हें जद्दा भेज दिया जाए।

मौलाना मुहम्मद उल-हसन को भी अपनी गिरफ्तारी की पहले ही खबर मिल गई थी। मौलाना मदनी और वहा के प्रमुख विद्वान मौलवियो की लाख कोशिश के बाद भी उनकी गिरफ्तारी का हुक्म रद्द न हो सका, इसलिए उनके कुछ भक्तो ने उन्हे मक्का मे ही किसी ऐसी जगह छिपा दिया जहा से वहा की पुलिस दिन रात एक करने पर भी उन्हे ढूढ न पाई। मौलाना मदनी को मौलाना मुहम्मद उल-हसन का पता न बताने के कारण गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। दो दिन बाद मौलाना अजीज गुल और हकीम नसरत हुसैन को भी पकड लिया गया। हुक्म हुआ कि मौलाना उल-हसन जिस आदमी के मकान मे ठहरे थे, यदि वह भी पता न बताए तो उसकी औरत छीन ली जाए और उसे सौ कोडे लगाए जाए। साथ ही मौलाना अजीज गुल और हकीम नसरत हुसैन को शेख मुहम्मद-उल हसन का पता न बताने पर गोली मारने का हुक्म भी जारी कर दिया गया।

उक्त दोनो महानुभावो ने गोली खाना मजूर कर लिया,

लेकिन मौलाना मुहम्मद उल हसन का पता ठिकाना बताने से साफ इन्कार कर दिया। अन्तत मक्का के सम्भ्रान्त लोगों के एक शिष्ट मडल ने शरीफ हुसैन से मिलकर प्रार्थना की कि यदि आप उन्हे (मौलाना उल हसन को) जुर्मवार समझते हैं तो खुद सजा दीजिए, लेकिन अ ग्रेजो के सुपर्द न कीजिए। लेकिन शरीफ हुसैन ने नए बने मुल्ला की तरह अ ग्रेजो से ताजी दोस्ती के नाम पर खुद सजा देने से इन्कार कर दिया।

मौलाना मुहम्मद उल-हसन को जब यह पता चला कि उनके तीन साथी जेल मे हैं और उनका पता न बताने पर गोली मारने की धमकी ही नही बल्कि सचमुच मार डालने की योजना है तथा उस परिवार पर भी जुल्म ढाया जा रहा है, जहा वह ठहरे थे तो वह बहुत दुखी हुए। वह अपने आपको पुलिस के हवाले करने को तयार हो गए, लेकिन उनके साथियो ने उन्हे सलाह दी कि वह काबा की परिक्रमा की पोशाक पहनकर पुलिस के सामने जाए ताकि वे कह सकें कि वह काबा की परिक्रमा मे थे और सचमुच ही उनका पता ठिकाना उन्हे मालूम न था। इस बात मे पुलिस भी सन्तुष्ट हो जाएगी। यह बात मौलाना उल-हसन का ठीक लगी और 17 दिसम्बर, 1916 का वह गिरफ्तार हो गए।

मौलाना मुहम्मद उल हसन की गिरफ्तारी के बाद उन्हें और उनके साथी मौलाना अजीजगुल तथा हकीम नसरत हुसैन को ऊटो पर बिठा कर जद्दा रवाना कर दिया गया। जद्दा रवाना होते समय उन्होने अपने समर्थको से कहा था—अल हमदोलिल्लाह वमुसीवते गिरफ्तारम न बमई सते—यानी ईश्वर को धन्यवाद है कि मुसीवत मे गिरफ्तार हुआ हू, किसी गुनाह मे नही।

मौलाना मदनी को पुलिस रिहा करना चाहती थी लेकिन वह अपने को भी जद्दा भेजने की जिद करते रहे थे। उनका कहना था—अगर मौलाना मुहम्मद उल हसन को हिन्दुस्तान भेज दिया जाए तो मैं मुक्त होने को तैयार हू, अन्यथा नही। मौलाना मदनी के साथियो ने शरीफ हुसैन (मक्का के शासक)

को समझाया कि हो सकता है मौलाना मदनी मक्का मे रहकर कुछ गडबडी पैदा कर दें और आपके लिए नई मुसीबत खडी कर दें, इसलिए मौलाना मदनी को भी जद्दा भिजवा दीजिए। उसकी समझ मे यह बात आ गई और इस तरह मौलाना मदनी भी जद्दा भिजवा दिए गए।

इस बात से मौलाना मुहम्मद-उल हसन तो चिन्ता मुक्त हुए ही, उनके समर्थको पर भी अच्छा असर हुआ। करीब 25 दिन जद्दा मे रहने के बाद चारो को एक जहाज पर सवार कराकर स्वेज नहर की ओर भेज दिया गया। स्वेज नहर पहुचते ही 15-20 सशस्त्र गोरे सिपाहियो ने उन्हे अपने कब्जे मे ले लिया। काहिरा होते हुए उन्हे जैजा बन्दरगाह ले जाया गया, जहा उन्हें स्याह कैदखाने मे बन्द कर दिया गया। वहा वे अकेले न थे—बल्कि पहले ही करीब दो सौ कैदी वहा मौजूद थे, जिनमे 8-10 भारतीय भी थे। मौलाना मुहम्मद-उल हसन और उनके साथियो के वहा पहुचने पर उनमे एक हलचल सी पैदा हो गई।

दूसरे ही दिन मौलाना मुहम्मद उल-हसन और उनके साथियो को एक फौजी दफ्तर मे तीन अग्रेज अफसरो की कमेटी के सामने पेश किया गया। दो अ ग्रेज जो उर्दू अच्छी तरह बोल लेते थे, ने उनसे सवाल जवाब किए जिसका सिलसिला नीचे दिया जा रहा है। इससे मौलाना मुहम्मद उल हसन की राजनैतिक चेतना और गहरी सूझ बूझ का पता चलता है।

प्रश्नकर्ता—आपको शरीफ ने क्यो गिरफ्तार किया ?

मौलाना—उसके मजहर (फतवा) पर दस्तखत न करने की बिना पर।

प्रश्नकर्ता—आपने उस पर दस्तखत क्यो नही किए ?

मौलाना—खिलाफ शरीयत (इस्लाम के विरुद्ध) था।

प्रश्नकर्ता—आपके सामने मौलाना अब्दुल हक हक्कानी का फतवा हिदुस्तान मे पेश किया गया था ?

मौलाना—हा।

प्रश्नकर्ता—फिर आपने क्या किया ?

मौलाना—रद्द कर दिया।

प्रश्नकर्ता—आप मौलवी उवेदुल्ला को जानते है ?

मौलाना—हा ।

प्रश्नकर्ता—कहा हैं ?

मौलाना—उन्होने देवबन्द मे अर्सादराज़ (काफी समय) तक मुझसे पढा है।

प्रश्नकर्ता —वह अब कहा है ?

मौलाना—मैं कुछ नही कह सकता। मैं अर्सा डेढ साल से ज्यादा से भी हेजाज वगैरह मे हू ।

प्रश्नकर्ता—रेशमी खत की क्या हकीकत (सचाई) है ?

मौलाना—मुझको कुछ इल्म नही। न मैंने देखा है।

प्रश्नकर्ता—वह लिखता है कि आप उसकी सियासी साजिश मे बर्तानिया के खिलाफ शरीक हैं और फौजी कमाडर हैं !

मौलाना—वह अगर लिखता है, तो अपने लिखने का वह खुद जिम्मेदार होगा। भला मैं और फौजी कमानदारी ? मेरी जिस्मानी हालात का मुलाहिजा फरमाइए और उम्र का अन्दाज लगाइए। मैंने तमाम उम्र मदरसे की मुदर्रिसी मे गुजारी है। मुझे फनून हर्बिया (युद्ध कला) और फौज की कमान से क्या मुनासबत (मतलब) ?

प्रश्नकर्ता—उसने देवबन्द मे 'जमय्यत अन्सार' क्यो कायम की थी ?

मौलाना—महज़ मदरसे के मफाद (हित) के लिए !

प्रश्नकर्ता—फिर क्यो अलहदा किया गया ?

मौलाना—आपस के इख्तिलाफ (मतभेद) की वजह से ।

प्रश्नकर्ता—क्या आपका मकसद इस जमय्यत से कोई सियासीअम्र (राजनैतिक काम) न था ?

मौलाना—नही ।

प्रश्नकर्ता—गालिबनामे की क्या हकीकत (सचाई) है ?

मौलाना—गालिबनामा कैसा ?

प्रश्नकर्ता—गालिबनामा गवर्नर हेज़ाज़ का खत जिसको मुहम्मद मिया हेज़ाज़ से लेकर गया है और आपने गालिबपाशा से उसे हासिल किया ।

मौलाना—मौलवी मुहम्मद मिया को जानता हू । वह मेरे रफीके सफर (सहयात्री) था । मदीने मे मुझसे जुदा हुआ । वहा से लौटने के बाद उसको जद्दा और मक्के मे तकरीबन एक माह ठहरना पडा था । गालिबपाशा का खत कहा है ? जिसको आप मेरी तरफ मसूब (आरोपित) करते हैं ।

प्रश्नकर्ता—मुहम्मद मिया के पास है ।

मौलाना—मौलवी मुहम्मद मिया कहा है ?

प्रश्नकर्ता—वह भाग कर हुदूद (सीमा) अफगानिस्तान चला गया है ।

मौलाना—फिर आपको खत का पता कैसे चला ?

प्रश्नकर्ता—लोगो ने देखा ।

मौलाना—आप ही फर्माए कि गालिबपाशा, गवर्नर हेजाज और मैं एक मामूली आदमी । मेरा वहा तक कहा गुजर हो सकता है ? फिर मैं नावाकिफ शख्स । न ज़बान तुर्की जानू, न पहले से तुर्की हुक्काम से रप्त-जब्त । हज से चन्द दिन पहले मक्का मुअज्जिमा पहुचा, अपने उमूरदीनिया (धार्मिक कृत्य) मे मशगूल हो गया । गालिबपाशा अगर्चे हेजाज का गवर्नर था, मगर 'तायफ मे रहता था । मेरी वहा तक रसाई न हज से पहले थी और न हज के बाद । यह बिलकुल गैर-माकूल बात है । किसी ने यो ही उडाई है ।

प्रश्नकर्ता—आपने अनवरपाशा और जमालपाशा से मुलाकात की ?

मौलाना—बेशक ।

प्रश्नकर्ता—क्यो कर ?

मौलाना—जब वह एक दिन के लिए मदीने मे आए थे, तो सुबह के वक्त उन्होने मसजिदे नब्वी मे उलमा का मजमा किया । मुझको भी हुसैन अहमद और वहा के मुफ्ती मजमए-आम मे ले गए और इख्तिताम मजमा (सभा खत्म होने पर) उन्होने दोनो वजीरो से मुस्तफा (हाथ मिलाना) करार दिया ।

प्रश्नकर्ता—आपने उस मजमे मे कोई तकरीर की ?

मौलाना—नही ।

प्रश्नकर्ता—क्यो ?

मौलाना—मस्लहत (जरूरत) नही समझी।

प्रश्नकर्ता—मौलवी खलील अहमद ने तकरीर की ?

मौलाना—नही।

प्रश्नकर्ता—हुसैन अहमद ने की ?

मौलाना—हा।

प्रश्नकर्ता—फिर अनवरपाशा ने कुछ आपको दिया ?

मौलाना—हा, इतना मालूम हुआ था कि हुसैन अहमद के मकान पर एक शख्स पाच पाच पौंड लेकर अनवरपाशा की तरफ से आए थे।

प्रश्नकर्ता—फिर आपने क्या किया ?

मौलाना—हुसैन अहमद को दे दिया था।

प्रश्नकर्ता—इन कागजात मे लिखा है कि आप सुलतान टर्की, ईरान और अफगानिस्तान मे इत्तिहाद (एकता) कराना चाहते हैं और फिर एक इज्जतमाई (सामूहिक) हमला हिन्दुस्तान पर कराकर हिन्दुस्तान मे अपनी हकूमत कायम कराना चाहते हैं और अंग्रेजो को हिन्दुस्तान से निकालना चाहते हैं।

मौलाना—मैं ताज्जुब करता हू कि आपको भी हकूमत करते इतने दिन गुजर चुके हैं। क्या आप गुमान कर सकते है कि मेरे जैसे गुमनाम शख्स की आवाज बादशाहो तक पहुच सकती है ? और फिर क्या साल हा साल तक की उनकी अदालतें मेरा जैसा शख्स जायल (दूर) कर सकता है और फिर अगर जायल भी हो जाए, तो क्या उनमे ऐसी कूवत है कि वे अपनी मुल्क की जरूरतो से जायद समझ कर हिन्दुस्तान की हुदूद पर फौज पहुचा दें और अगर पहुचा भी दें तो आया उनमे आपसे ताकत जग की होगी ?

प्रश्नकर्ता—फर्माते तो आप सच हैं। मगर इन कागजात मे ऐसा ही लिखा है।

मौलाना—इससे आप खुद ही समझ सकते हैं कि इनकी बातें किस कदर पाए एतबार (विश्वसनीय) रख सकती हैं।

प्रश्नकर्ता—शरीफ की निस्बत आपका क्या खयाल है ?

मौलाना—वह बागी है।

प्रश्नकर्ता—हाफिज अहमद साहब को आप जानते हैं ?

मौलाना—खूब ! वह मेरे उस्तादजादे हैं और बहुत सच्चे और मुखलिस दोस्त (परम मित्र) हैं। मेरी तमाम उम्र उनके साथ गुज़री है।

ज़ाहिर है कि मौलाना मुहम्मद-उल हसन की सब चेष्टाओ, हरकतो पर अग्रेजो की कडी और शख्त नज़र थी और जानते थे कि मौलाना क्या हैं ? मौलाना के जवाब भी लाजवाब थे। एक बार अ ग्रेज भी सोचने पर मजबूर हो गए थे कि मौलाना मुहम्मद उल हसन की जडें कहा है और चोटी की ऊचाई क्या है ? तना और शाखो का अन्दाज लगाना भी मुश्किल हो गया था।

इस लम्बे चौडे बयान के बाद मौलाना मुहम्मद-उल हसन को अ य कैदियो के बीच न भेजकर एक छोटी सी कोठरी मे बन्द कर दिया गया, जिसमे रोशनी घुसने का सवाल ही नही था और हवा भी जैसे तसे घुस पाती थी। साथ ही उनके तीनो साथियो के भी अलग-अलग बयान लिए गए, जिनमे से अजीज़ गुल हसन से काफी सवालात पूछे गए क्योकि उनका सम्बन्ध आजाद कबीलो से था। बयान के बाद इन तीनो को भी अलग अलग कोठरियो मे बन्द कर दिया गया, जो मलमूत्र की दुर्गन्ध से अटी पडी थी। मौलाना मुहम्मद-उल हसन ने तो सात दिन तक भोजन का एक कौर तक मुह मे नही डाला।

सात दिनो के बाद चारो को हवाखोरी के लिए एक स्थान पर इकट्ठा होने का मौका मिला और चारो ने आपस मे यह जानकर कि सबके बयान मिलते जुलते हैं, राहत की सास ली। अन्यथा उन्हे यह डर खाए जा रहा था कि हमारे आपसी बयानो मे विरोध न हो। वे अलग अलग कोठरियो मे ब द फासी के तख्ते पर लटकने के खयालो मे डूबे रहते।

बयान के एक महीने बाद इन चारो को फिर उसी दफ्तर मे बुलाया गया और कहा गया—कल आप लोगो को कही बाहर भेजा जाएगा, अपनी तैयारी कर लो। दूसरे दिन जहाज से इन्हे माल्टा भेज दिया गया, जहा खतरनाक कैदी रखे जाते थे। टर्की

सरकार के बडे अफसर और सिपाही इनको छोडने जहाज मे मौजूद थे और जहाज पर एक बडा सा बोर्ड लगा दिया गया, जिस पर लिखा था—'इस जहाज मे सिर्फ रोगी और घायल सिपाही हैं, कोई लडाई का सामान नही' ताकि जर्मनी का कोई जहाज हमला न करे। साथ मे एक फौजी जहाज भी उस जहाज के रक्षक के रूप मे चल रहा था। हमले की सूरत मे जीवन रक्षक उपकरण और नावो के नम्बर भी प्रत्येक व्यक्ति को दे दिए गए थे।

जहाज मे जो टर्की के करीब 50 सिपाही थे, उन्होने काफी उत्पात मचा रखा था। फिर भी मौलाना मुहम्मद उल हसन, मौलाना मदनी, अजीजगुल हसन और हकीम नसरत हुसैन के लिए उनके मन मे सम्मान था, जिसे वे व्यक्त कर चुके थे। 21 फरवरी, 1917 को ये लोग माल्टा पहुचे। वहा इन लोगो को मोगेर कम्प मे रखा गया, जहा युद्ध-कैदी थे। फिर भी इनके साथ अच्छा बर्ताव नही किया जाता था जबकि युद्ध-बन्दियो को वे सारी सुविधाए दी जाती है, जो उन्हे अपनी जगह या घर मे उपलब्ध होती हैं। मौलाना मुहम्मद उल हसन के पास कुछ धन राशि थी, जिससे वह अपने लिए कुछ सहूलियत जुटा पाए। इस तरह डेढ हजार रुपये उनके खर्च हो गए।

माल्टा के मोगेर कैम्प मे रहते हुए काफी दिनो के बाद सयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के तत्कालीन गवनर सर मेस्टन के सेक्रेटरी मिस्टर बर्न माल्टा गए और मौलाना मुहम्मद उल हसन से भेंट करने पर पूछा—हिंदुस्तान दारुल हरब है या दारुल इस्लाम। मौलाना का जवाब था—कुछ विद्वान दारुल हरब कहते हैं और कुछ दारुल इस्लाम। मिस्टर बर्न ने फिर पूछा—यह कैसे हो सकता है ? वह बोले, यदि किसी मुल्क पर गैर मुसलमान शासको का शासन वहा के मुसलमानो को अपने धार्मिक कृत्यो को नही निभाने देता और वे नही कर पाते, तो वह मुल्क दारुल हरब है उन मुसलमानो के लिए जो स्वतन्त्रता से अपने धार्मिक कृत्यो को पूरा नही कर पाते। तब उन्हे चाहिए कि वे उस मुल्क को छोड दें या शासको के विरुद्ध युद्ध करें। ऐसे ही लोग

हिन्दुस्तान को दारुल हरब कहते है। कुछ लोगो का कहना है कि अग्रेज हकूमत ने अभी तक किसी धार्मिक काम मे बाधा नहीं डाली है, इसलिए हिन्दुस्तान दारुल इस्लाम है।

मिस्टर बर्न ने फिर पूछा—आपकी इस बारे मे क्या राय है? वह बोले, ऐसे मामलो मे मतभेद रहता है, अत कुछ कह पाना ठीक नही।

मिस्टर बर्न के बहनोई फतेहपुर जिले के कलक्टर थे। बातचीत के दौरान जब मौलाना उल हसन ने अपने साथियो के बारे मे बताया तो हकीम नसरत हुसैन का नाम आया। वह उसी जिले के एक अच्छे जमीदार थे। मिस्टर बर्न को जब मालूम हुआ तो उन्होने हकीम हुसैन को मुक्त करवाने का आश्वासन दिया। परन्तु वह राजी न हुए और उन्होने मिस्टर बर्न से कहा, आप हम सबको रिहा करवाइए। मैं अकेला रिहा न होऊगा। मिस्टर बर्न ने सबको रिहा करवाने मे अपनी मजबूरी जाहिर की, अत हकीम हुसैन भी रिहा न हो पाए।

उधर मिस्टर बर्न कुछ दिनो बाद इग्लैड चले गए और इग्लैड से उन्होने पत्रो का एक पुलिन्दा भेजा जो भारत के अनेक मौलवियो ने मौलाना मुहम्मद उल-हसन को लिखे थे कि वह मिस्टर बर्न की शर्तें मान लें, ताकि रिहा हो सकें। इस सम्बन्ध मे सयुक्त प्रात के उच्च मुस्लिम धर्म गुरुओ का एक प्रतिनिधि मडल प्रात के गवर्नर सर मेस्टन से मिला था और उससे मौलाना को रिहा करने की अपील की थी। मिस्टर बर्न इसीलिए माल्टा गए थे।

इसके कुछ दिनो बाद हकीम नसरत हुसैन बीमार पडे। शुरू मे कैम्प मे इलाज हुआ। बीमारी के बढने पर उन्हे अस्पताल भेज दिया गया। लेकिन उनके साथियो मे से किसी को भी उनके पास रहने की इजाजत न दी गई। बाद मे मुश्किल से हर तीसरे दिन उन्हें देखने की माग मानी गई। हकीम साहब को दरअसल निमोनिया हो गया था, उन्हें दवा के साथ शराब देने को कहा गया किन्तु उन्होने साफ मना कर दिया। बार-बार उनके पास रहने की माग करने पर भी अग्रेज अधिकारी टस से मस न

हुए और जब एक दिन मौलाना और उनके साथी हकीम हुसैन को देखने अस्पताल गए तो मुख्य द्वार पर उन्हे बताया गया कि जिसे आप देखने आए हैं वह दुनिया से जा चुका है।

बेचारो पर जैसे बिजली गिरी हो पर करते भी क्या। वे लोग अपने हाथो उन्हें दफन करना चाहते थे, लेकिन उन्हें यह इजाजत भी न मिली। मौलाना उल-हसन से कहा गया कि वह निमोनिया से मरे हैं और यह छूत की बीमारी है, इसलिए तुम उन्हें छू भी नही सकते। दूर से देखकर नमाज अदा कर लें।

इस पर मौलाना बोले—हम वहा जाकर क्या करेंगे। जैसा आपको करना हो कर लें। अ ततः अधिकारी को झुकना पडा और मौलाना मुहम्मद-उल-हसन को उ हें नहलाने, कफन ओढाने की इजाजत दे दी गई। वह कैम्प से पचास साठ कैदियो को बुला लाए और हकीम साहब के शव को नहला, कफन ओढा कर कब्रिस्तान ले गए। वह हिन्दुस्तान की आजादी के लिए माल्टा की मिट्टी मे मिल गए। उ हे उस मिट्टी मे मिलना भी नसीब न हो सका, जिसकी खातिर वह शहीद हुए।

प्रथम विश्व-युद्ध, जो 1914 मे प्रारम्भ हुआ था, 1918 मे समाप्त हो गया। युद्ध की समाप्ति पर माल्टा के ब दी रिहा होने शुरू हुए। जब सारे बन्दी रिहा हो गए तो एक दिन मौलाना मुहम्मद उल हसन को सूचना दी गई कि आपको हि दुस्तान भेजा जाएगा, आप तैयार रहिए। मौलाना को मात्र कुछ जरूरी लत्ते कपडो के सिवाय लाना ही क्या था। उ होने रसद (खाद्य सामग्री) बाट दी, कपडो की गठरी बाध ली।

सन् 1920 के 12 मार्च को वह और उनके साथी जहाज पर सवार हुए। तब भी सशस्त्र गोरे सिपाही उनके साथ थे। अस्क दरिया मे उन्हे जहाज से उतार कर मीलो पदल चलाया गया और अपराधी सिपाहियो की बैरको मे ब द कर दिया गया। 2 अप्रैल, 1920 को वह सैदोनरस से स्वेज को रवाना हुए और स्वेज नहर से होते हुए 22 मई, 1920 को बम्बई पहुचे। अभी वह जहाज पर ही थे कि एक अ ग्रेज सी० आई० डी० अधिकारी और कुछ मुसलमान अफसरो ने उनसे कहा—

यो तो आप बिलकुल मुक्त है, फिर भी आप मौलवी रहीम बख्श साहब से मिलने के बाद ही जहाज से उतरें। कुछ ही देर बाद उन लोगो के हटने पर मौलाना रहीम बख्श वहा पहुच गए और मौलाना मुहम्मद-उल हसन को देखकर आसू बहाने लगे। फिर असली मकसद पर आकर बोले— अब आप सीधे देवबन्द चले जाइए, किसी का स्वागत-सम्मान कबूल मत कीजिए। खासकर खिलाफत कमेटी के जाल मे मत फसिए, बेकार के सकट मे फस जाएगे।

मौलाना उल-हसन ने मौलाना रहीम बख्श को धन्यवाद देकर विदा कर दिया और वह जहाज से उतर कर सीधे खिलाफत कमेटी के दफ्तर मे ठहरे, जहा उन्हे मान-पत्र भेंट किया गया, जिसके जवाब मे उन्होने भारत की आजादी मे अपनी निष्ठा-आस्था को दोहराया। यहा से वह दिल्ली आकर डा० अ सारी के यहा रुके, फिर देवब न्द चले गए। वही से भारतीय मुसलमानो के बीच क्राति एव आजादी का प्रचार-प्रसार करते रहे।

चार साल तक भारत से बाहर रहकर, सघर्ष करते हुए उन्हे गठिया रोग हो गया था और पेशाब भी ज्यादा आने लगा था। उनके अनेक शिष्य विदेशो मे निर्वासित जिन्दगी गुजार रहे थे, जिसका उन्हे बेहद मलाल था। वह जर्जर हो गए थे, फिर भी दिन-रात लिखते रहते थे। 29, अक्तूबर, 1920 को अलीगढ विश्व विद्यालय के कुछ क्राति एव स्वाधीनता समर्थक छात्र उन्हें अलीगढ ले गए। उस जलसे मे दिया गया भाषण उनका अन्तिम भाषण था।

अग्रेजो को भारत से निकालने की योजना, चेष्टा से अब भी वह भरपूर थे, अत 30 नवम्बर, 1920 को काबुल और सरहद से आए कुछ व्यक्तियो से भारत की आजादी की भावी योजना पर वह सकेत, इशारो से बातचीत करते रहे क्योकि उनकी जबान बद हो गई थी और कान भी ठीक से काम नहीं कर रहे थे। उसी दिन उनका देहान्त हो गया। जिन्दगी के 36 साल उन्होने बेहतर तालीम और भारत की आजादी के सघर्ष मे बिताए। देवबन्द दारुल उलूम से कुछ दूर मौलाना मुहम्मद उल-हसन की टूटी-फूटी कब्र के अवशेष आज भी विद्यमान हैं।

अंग्रेजो का नंगा नाच :
श्मशान कूचा चेलान

हाजी इमदाद्-उल्ला के मक्का चले जाने पर वली उल्लाई संगठन का भार मौलाना मुहम्मद कासिम और हाजी रशीद अहमद गंगोही के कंधो पर आ पडा। लेकिन अंग्रेजो ने मुसलमान, मौलवियो, विशेष रूप से दिल्ली के मौलवियो का जिस तरह कत्ल-ए-आम करवाया, उससे हर मुसलमान का दिल दहल गया और दिमाग हिल गया। इस तरह मौलाना मुहम्मद कासिम और हाजी रशीद अहमद गंगोही कुछ भी सोचने अथवा करने की स्थिति मे नही रहे।

स्थिति यह थी कि हाजी रशीद अहमद गंगोही को गिरफ्तार कर लिया गया था और वह बरेली जेल मे फासी का इन्तजार कर रहे थे। मौलाना मुहम्मद कासिम के पीछे गिरफ्तारी वारट घूम रहा था। ऐसी स्थिति मे कुछ सोचने अथवा कुछ करने का प्रश्न ही कैसे पैदा होता !

आतक, नर सहार और आगजनी के माहौल मे कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यदि होश गवा बैठे तो आश्चर्य करना बेकार है। कैसा था वह दहशत, आतक भरा माहौल ? ख्वाजा हसन निजामी के शब्दो मे उसकी झलक काफी साफ नजर आती है।

"दिल्ली के तमाम मुहल्लो से ज्यादा चेलो के कूचे पर मुसीबत आई थी। इस मुहल्ले मे बडे-बडे शरीफ और नामवर उलमा रहते थे। मौलाना शाह वली उल्ला और शाह अब्दुल अजीज मुहद्दस का घराना भी इसी मुहल्ले मे आबाद था। सर सय्यद अहमद खा का घर भी इसी मुहल्ले मे आबाद था। मौलाना सुमानी भी इसी मुहल्ले मे रहते थे। गरज यह है कि यह मुहल्ला बडे-बडे साहब-ए-कमाल लोगो का मखजन था। मुशी जका

उल्ला साहब भी इसी मुहल्ले के बाशिन्दा थे। अब भी इनके बड़े लडके इसी मुहल्ले मे आबाद हैं। मगर गदर के वक्त मुंशी साहब कही बाहर गए हुए थे और सर सय्यद भी अपने कुनबे समेत दिल्ली मे न थे।"

"हुक्म हुआ कि इस कूचे के तमाम मर्दों को कत्ल कर दो या गिरफ्तार करके ले आओ। इस हुक्म की पाबन्दी इस बेदर्दी से हुई कि मुहल्ले का कोई मर्द जिन्दा न बचा। या तो सिपाहियो ने घर मे घुसकर मार डाला या गिरफ्तार कर हाकिम के सामने ले गए, जिन्हें देखकर हाकिम ने हुक्म दिया कि जमुना किनारे ले जाकर गोली मार दो। चुनान्चे ऐसा ही किया गया।"

लार्ड राबर्ट का बयान भी कम सनसनी खेज नही। वह लिखता है—"हम सुबह को लाहौरी दरवाजे से चादनी चौक गए, तो हमको शहर सचमुच मे मुर्दो का शहर नजर आता था। कोई आवाज सिवाय हमारे घोडो की टापो के सुनाई नही देती थी, कोई जिन्दा इन्सान नजर न आता था। सब तरफ मुर्दों का बिछौना बिछा था जिनमे कुछ सिसक रहे थे। हम लोग चल रहे थे तो बहुत धीरे धीरे बात करते थे। डर था कि कही हमारी आवाज से मुर्दे चौक न पडें।"

रसल का लिखा तो और भी भयानक है। वह लिखता है "कभी कभी मुसलमानो को मारने से पहले उन्हें सूअर की खाल मे सी दिया जाता था। उन पर सूअर की चर्बी मल दी जाती थी और फिर वे जिन्दा जला दिए जाते थे।"

यह बात रसल की डायरी के दूसरे खड के पेज 43 पर देखी जा सकती है। तो सभ्य और ईमानदार कौम अंग्रेज ने ईश्वर के पुत्र ईशु की फासी का बदला सैकडो साल बाद हिन्दुस्तान के मुसलमानो से इस तरह लिया, जबकि ईसा मसीह की फासी से इन भारतीय मुसलमानो और उनके पूर्वजो का दूर का भी वास्ता नही था। लेकिन सत्ता के भूखे भेडियो और दौलत रूपी मास के टुकडो पर झपटने वाले गिद्धो-यानी अंग्रेजो ने नंगे होकर अपनी सभ्यता, और कौम को भी बदनाम किया।

लेफ्टीनेंट माजेण्डी ने भी एक ऐसी घटना का जिक्र यो किया

है—"एक घायल आदमी को कुछ सिपाहियों ने अपनी संगीनों से उसके मुंह को बार बार बींधा और फिर धीमी आंच में उसे जिन्दा ही भून दिया।"

ख्वाजा हसन निजामी की पुस्तक—'दिल्ली की झाँकियाँ' में ऐसी घटनाओं की भरमार है। लेकिन आज के हमारे तंत्र के कर्णधार शायद अपना और अपने बच्चों का भविष्य बनाने की चिंता के सिवाय न इतिहास से परिचित है और न कुर्बानी, बलिदान तथा त्याग-संघर्ष की शब्दावली तथा उसके अर्थ से वाकिफ। आचरण या व्यवहार की उनसे उम्मीद करना खुद को धोखा देना है।

ऐसे दहशत और आतंक भरे समय तथा सन् 1857 की क्रांति में हिस्सा लेने और अंग्रेजों द्वारा जेलों में ठूंसे लोगों को आम माफी की घोषणा के बाद जब मौलाना मुहम्मद कासिम और हाजी रशीद अहमद गंगोही मुक्त हुए तो वे सोचने लगे कि भारतीय मुसलमानों में चेतना बनाए रखने के लिए कौन सा रास्ता अपनाया जाए। दिल्ली का कूचा चेलान का मदरसा तो रहा नहीं था। फिर शाह वली उल्ला से हाजी इमदाद् उल्ला-तक, जो एक परम्परा बनी थी, उसे कैसे आगे बढाया जाए।

यह एक ऐसा मुसीबतों से भरा कठिन और नाजुक समय था, जब दो कानों के बजाय चार कान और दो आंखों की जगह चार आंखें सुनने, देखने को जरूरी थीं। कदम-कदम पर खतरा बात बात में शक फिर बिना हक के, नाहक मरने वाली किसी घटना या बात को जन्म देना सचमुच में अक्लमंदी न थी। फिर भी मौलाना मुहम्मद कासिम चुप बैठे रहने को तैयार न थे क्योंकि राज भक्त बल्कि अंग्रेज भक्त सर सय्यद अहमद खां मुसलमानों को अंग्रेज-परस्ती का पाठ पढ़ाने में जुटा था और उन्हें (अंग्रेजों को) भारी ईमानदार और दुनिया की सबसे सभ्य कौम बताकर भारतीयों को 'गंदा जानवर' बता रहा था। ऐसे में उनका चुप बैठना सम्भव ही न था।

इस तरह 1857 की क्रांति के बाद भारतीय मुसलमान दो खेमों में बंट गए थे। एक वे, जो देशभक्त और कुरान के

पाबन्द थे और दूसरे वे, जो राज या अ ग्रेज़ भक्त हो गए थे और कुरान की हिदायतो को वे अपने लिए जरूरी नही समझते थे।

पहले वर्ग का नेतृत्व मौलाना मुहम्मद कासिम और उनके साथी कर रहे थे तो दूसरे वर्ग के नेता सर सय्यद अहमद खा थे, जो 1857 से पहले ही अंग्रेज हकूमत की नौकरी मे दाखिल हो चुके थे। देश-भक्तो के लिए उनकी आलोचना करना भी खतरे से खाली न था। सर सय्यद अहमद खा की आलोचना का अर्थ था किसी झूठ मूठ के षड्यन्त्र मे बिना अपराध ही फसकर काले पानी की सजा या फासी के रस्से मे गर्दन को कसवाना।

अंग्रेज हकूमत ने पटना षड् यन्त्र, अम्बाला षड्यन्त्र केस बना कर भारतीयो, खासकर मुसलमानो को चेतावनी दे दी थी कि वे हिन्दुस्तान को दारुल इस्लाम बनाने के चक्कर मे न पडे। यदि कोई ऐसा करेगा तो सजा मिलना लाजिमी है फिर चाहे वह काला पानी की सजा हो या फासी के फन्दे पर झूलने की।

मौलाना मुहम्मद कासिम, अन्तत उस रास्ते पर उतरे जो ज्यादा खतरे वाला न था। उन्होने गुरु परम्परा के प्रथम गुरु शाह वली उल्ला का रास्ता अपनाकर सन् 1867 मे यानी 1857 की क्राति के दस वर्ष बाद सहारनपुर से 22 मील दूर देवबन्द नाम के एक छोटे से कस्बे मे, जो किसी भी दृष्टि से मशहूर न था, एक दारुल उलूम (विद्या मन्दिर) की स्थापना की, जो दिल्ली मदरसा के तौर तरीके पर काम करने वाला था।

हा, यहा कुछ ऐसे मुसलमान जरूर थे, जिनके रक्त मे देश-प्रेम की गर्माहट थी। वे देवबन्द के खानदानी, कदीमी मुसलमान थे और उन्हे हिन्दुस्तान से प्यार था। वे अंग्रेज कौम को हिकारत की निगाहो से देखते थे। उन्हें देश का दुश्मन समझते थे।

देवबन्द के दारुल उलूम की नीव उनके मन की उज्ज्वल भावनाओ और मस्तिष्क के उच्च विचारो की धरती पर रखी गई थी, किसी रुपयो भरी थैली के बल पर नही। यह बात दारुल उलूम के सचालन के लिए बनाए गए उसूलो मे से एक ही बताने को काफी है।

'आजादी जमीर के साथ हर मौके पर कलमतुलहक का

ऐलान हो। कोई सुनहरी तमअ और मुगत्वियाना दबाव या सरपरस्ताना उसमे हायल न हो सके।'

यानी हर ऐसी बात, जिसे सत्य समझा जाए, निर्भीकता के साथ घोषणा की जाए। उसमे न तो सरक्षता और न मित्रता तथा न आर्थिक सहायता का लिहाज किया जाए।

तो देवबन्द दारुल उलूम की स्थापना का लक्ष्य भी अग्रेजो की गुलामी से मुक्त होने के लिए शिक्षा के द्वारा साफ सुथरे रास्ते की पहचान थी। सन् 1857 की असफल क्राति के पीछे भी सन् 1719 की शाह वली उल्ला की मदरसा योजना थी। यह ठीक है कि 1857 की क्राति के और भी अनेक कारण थे। फिर भी मुसलमाना मे देश भक्ति का जज्बा पैदा करने मे वली उल्लाई सगठन के विद्वान इमामो का जबर्दस्त योगदान था। यही वजह है कि उस क्राति मे हिदुओ के मुकाबले भारतीय मुसलमानो ने बढ चढ कर हिस्सा लिया और अग्रेजो के जुल्म के शिकार भी वे ही ज्यादा हुए। जिससे घबराकर उनका एक वर्ग अग्रेज भक्त बना और भारत की आजादी की लडाई मे लापरवाह रहा, अत भारत के मुसलमानो पर देश भक्त न होने का लाछन लगाना सही नही जचता। मरता क्या न करता के मुताबिक हर इसान अपने बचाव के लिए गलत सही कदम उठाता ही है। फिर हिदुओ मे भी तो ऐसे लोगो की कमी न थी, जो अग्रेजो के पालतू बनकर अपने सगे सम्बन्धियो के गले कटवाते रहे। खुद सर, रायबहादुर तथा राय साहब, जागीरदार और अग्रेज हकूमत के ऊचे पदो पर बैठकर भी देशभक्त हिदुओ को भारी यातनाए देते रहे।

बल्कि हिन्दुओ को ही नही, देश भक्त मुसलमानो को भी अग्रेज जुल्म का शिकार बनाने मे अपनी घिनौनी हरकतो, हथकडो का कमाल दिखाते रहे। ऐसे अग्रेज परस्त हिन्दुओ ने अपने भाई अन्य हिदुआ के घर नीलाम करवाए, जमीन जायदादें कुर्क करवाई और अचरज यह है कि सन् 1947 मे अग्रेजो के भारत से चले जाने के बाद वे आजादी के दीवाने बनकर सत्ता पर कब्जा जमा बैठे। हालत यह है कि अब भी उन्ही की औलाद सत्ता पर

एकाधिकार जमाए बैठी है। लोकतन्त्र के नाम पर नौकरशाही तन्त्र काबिज है। यानी दिवान-ए-खास दिवान ए-आम न होकर आज भी दिवान ए-खास ही है।

नो देवबन्द का दारुल उलूम आम आदमी के लिए स्थापित किया गया था, न कि खास-उल खास के लिए। यह बात मौलाना मुहम्मद कासिम ने साफ तौर पर दारुल-उलूम के स्थापना पर ही जाहिर कर दी थी। उन्होने कहा था

"इस मदरसे का सबध ज्यादा से ज्यादा साधारण मुस्लिम जनता से रखा जाए, जिससे मुसलमानो मे अपने आप एक सगठन कायम हो जाए।"

"मदरसे का कोई स्थाई कोष न बनाया जाए, न किसी राजा, नबाब या सरकार से आर्थिक सहायता ली जाए और न सरक्षण आदि।"

देवबन्द दारुल-उलूम से प्रथम स्नातक के रूप मे मुहम्मद-उल-हसन निकले, जो महान क्रातिकारी अग्रेज-हुकूमत के लिए भारी सिर दर्द साबित हुए। अग्रेज उन्हे भारी खतरनाक आदमी की शक्ल मे पहचानते थे। सयोग की बात है कि देवबन्द दारुल-उलूम के सस्थापक मौलाना मुहम्मद कासिम और प्रथम शिक्षक मुल्ला महमूद तथा प्रथम स्नातक मुहम्मद-उल-हसन तीनो का ही नाम 'म' से शुरू होता है। इन तीन देश-भक्त क्रातिकारियो द्वारा उस जुल्म-ओ-सितम के माहौल मे दारुल-उलूम की स्थापना, उसमे शिक्षक बनना और वहा से पढ-लिख-कर अग्रेज हकूमत को उखाडने के लिए प्राणो की बाजी लगाना एक ऐसी ऐतिहासिक घटना है जो अविस्मरणीय रहेगी।

देवबन्द दारुल उलूम, जो सन् 1867 मे स्थापित हुआ था, मे प्रथम पाच स्नातक – मौलाना मुहम्मद उल-हसन, मौलाना अब्दुल हक, मौलाना फखरुल हसन गगोही, मौलाना फतह मुहम्मद थानवी और मौलाना अब्दुल्ला जलालाबादी थे। जिन्हें 9 जनवरी, 1874 को दस्तार फजीलत' (विद्वान होने की पगडी) बाधने की रस्म पूरी की गई थी।

इस तरह एक ओर देश भक्त भारतीय मुसलमान देश-प्रेम

का सवक सिखाने के लिए देवबन्द को केन्द्र बना चुके थे तो दूसरी तरफ अंग्रेज-परस्त सर सय्यद अहमद खां अंजमन ए-इस्लाम नाम का संगठन और अलीगढ़ मे फिरका परस्त मुसलमानो के लिए मुस्लिम यूनीवर्सिटी की स्थापना करके नामवरी की मिसाल कायम करने मे लगे थे।

यहां यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि सर सय्यद अहमद खां देवबन्द के मौलानाओ से भी अलीगढ़ मुस्लिम कालेज में सहयोग चाहते थे और जब उन्होने अपने एक संदेश वाहक को वहा मौलाना रशीद अहमद गंगोही के पास भेजा और उसने सहयोग की बात सामने रखी, तो मौलाना-गंगोही का जवाब था

"भाई ! हम तो अपने इस इमाम (मौलाना मुहम्मद कासिम) के मातहत हैं। वह जैसा हुक्म देंगे वही हमे मंजूर है।"

फिर जब उस व्यक्ति ने कासिम साहब से सहयोग देने की बात कही, तो उन्होने साफ इन्कार कर दिया। इस पर उसने कालेज मे शामिल होकर उसके दोष दूर करने की बात कही तो तो उनका जवाब था

'बबूल के दरख्त की चाहे जितनी टहनियां काटी जाए, उनमे फिर से कांटे ही निकलेंगे। उसका सुधार तो यही है कि उसे जड से उखाड़कर फेंक दिया जाए।"

यह था मौलाना मुहम्मद कासिम का राष्ट्रीय दृष्टिकोण ! लेकिन सन् 1875 मे अलीगढ मे मुस्लिम कालेज स्थापित हो गया और कालेज मे शिक्षा देने के लिए विलायत से अंग्रेज प्रोफेसर बुलाकर नियुक्त किए गए। उनकी शिक्षा का मुख्य आधार वहां पढ़ने वाले मुस्लिम छात्रों को यह बताना था कि हिन्दुओ और तुम्हारे जीवन मे कोई भी बात, रस्म-रिवाज, सभ्यता—संस्कृति, भाषा मजहब आदि साझा नही, फिर मुल्क ही साझा क्यो रहे ! इसलिए मुल्क भी अलग होना बहुत जरूरी है। सत्ता मे बैठे अंग्रेज तो हिन्दु-मुसलमानो को चीर ही रहे थे, शिक्षा के अमृत मे भी वही जहर मिलाकर पिलाया जा रहा था। अलीगढ मुस्लिम कालेज, जो बाद मे अलीगढ मुस्लिम यूनी-

वर्सिटी मे तबदील हो गया था, वास्तव में सन् 1947 मे बने पाकिस्तान की आधारशिला थी।

पाकिस्तान तो बन गया, साझा मुल्क टूट गया लेकिन नीव का पत्थर वही है जबकि बिल्डिंग का निर्माण कही अन्यत्र हुआ है।

सन् 1878 मे ही देवबन्द दारुल उलूम के सस्थापक मौलाना मुहम्मद कासिम का देहान्त हो गया और उनकी जगह हाजी रशीद अहमद गगोही दारुल उलूम की देखभात करने लगे। यहा के प्रथम छात्र मौलाना मुहम्मद-उल-हुसन भी अवैतनिक रूप से यहा शिक्षक का काम करने लगे थे।

सन् 1884-85 मे इडियन नेशनल काग्रेस की स्थापना के बाद देवबन्द मदरसा ने देशभक्त मुसलमानो से साफ तौर पर काग्रेस मे शामिल होने की वकालत की थी और सर सय्यद अहमद खा तथा अग्रेज हुक्मरानो की हिन्दु-मुस्लिम फिरका-परस्ती का विरोध करने की अपील की थी।

यहा एक उदाहरण प्रस्तुत करना ठीक रहेगा। जब कुछ मुसलमानो ने देवबन्द जाकर मौलाना रशीद अहमद से यह पूछा कि काग्रेस मे शामिल होना जायज है या नहीं—तो इमाम के तौर पर उनका जवाब था।

"अकनू हाले हि दरा खुद गौर फर्मायन्द के इजराये अहकाम कुफ्फार नसारा दरी जा वचह कूवत वा गल्वा हस्त। अगर अदना कलक्टर हुक्म कर्द कि दर मसाजिद जमात अदा न कुनेद। हेचकस अज अमीर-ओ गरीब कुदरत नदारत कि अदाये आ न मायद।"

यानी भारत की दशा पर आप खुद ही सोचे कि इस मुल्क मे ईसाई काफिरो के कानून इतने ताकतवर है कि एक अदना कलक्टर यह हुक्म दे कि मसजिदो मे इकट्ठा होकर नमाज मत पढो और फिर किसी अमीर, गरीब मे हिम्मत नही कि वह मस्जिद मे जाकर नमाज पढ सके।

तो यह था देवबन्द दारुल-उलूम के इमाम गगोही का फतवा, जिसे सर सय्यद अहमद खा जैसे मुसलमान अग्रेजो के सामने दोहराने से भी घबराते थे। कितने निडर, निप्पक्ष थे हाजी रशीद अहमद गगोही ? यह बात साफ है उनकी ऊपर की तकरीर से।

आजादी का दीवाना—मौ० वर्कतुल्ला

जनवरी, 1928 में सॉनफ्रांसिस्को नगर में 65 वर्ष की उम्र में मौलवी वर्कतुल्ला का देहान्त हुआ। उनका पूरा नाम मौलवी मुहम्मद वर्कतुल्ला था। वह सन् 1915 16 में काबुल स्थित भारतीय अस्थायी सरकार के प्रधानमंत्री भी रहे, जो राजा महेन्द्र प्रताप के प्रयासों का फल था।

मौलवी मुहम्मद वर्कतुल्ला प्रारम्भ से ही देशभक्ति और क्रांतिकारी विचारों के व्यक्ति थे। स्वाभाविक था कि उन्हें उस सरकार का प्रधानमंत्री बनाया गया, जो भारत को अंग्रेज-हुकूमत की गुलामी से छुटकारा पाने के लिए बनी थी। उस समय काबुल सरकार अमीर हबीबुल्ला खां की थी। साफ जाहिर है कि अमीर हबीबुल्ला खां का उस अस्थायी सरकार को समर्थन प्राप्त था।

सन् 1914 में प्रारम्भ हुए यूरोपीय महायुद्ध की समाप्ति पर काबुल स्थित अस्थायी भारत सरकार भंग हो गई और मौलवी मुहम्मद वर्कतुल्ला यूरोप चले गए। वहां उन्होंने लगातार दस वर्ष तक भारतीय स्वतंत्रता का प्रचार किया।

सन् 1924 में मौलवी वर्कतुल्ला ने सोवियत शासन प्रणाली का बारीकी से अध्ययन किया और फिर बर्लिन चले गए। बर्लिन से ही उन्होंने 'अल इस्लाह' नाम से उर्दू भाषा में पत्र निकाला, जिसमें भारतीय स्वतंत्रता पर आधारित सामग्री होती थी। बाद में धनाभाव के कारण वह पत्र बन्द कर देना पड़ा।

फरवरी, 1927 में मौलवी मुहम्मद वर्कतुल्ला ने ब्रुसेल्स में होने वाली साम्राज्यवाद विरोधी परिषद में गदर पार्टी के प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया था। भारत से राष्ट्रीय कांग्रेस की तरफ से उक्त परिषद में स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू भेजे गए थे। इस परिषद के जोशीले और रोमांचकारी संस्मरण श्री नेहरू

ने अपनी रचना 'मेरी कहानी' मे लिखे हैं।

नेहरू कहते हैं—उक्त परिषद मे अन्तर्राष्ट्रीय गुप्तचरो क
भरमार थी और कुछ गुप्तचर तो किसी देश या सस्था के प्रति
निधि की हैसियत से परिषद मे शामिल हुए थे। जावा, हिंदची
फिलिस्तीन, सीरिया, मिस्र उत्तरी अफ्रीका, और अरब राष्
के प्रतिनिधि भी उक्त परिषद मे आए थे।

स्पष्ट है कि उक्त परिषद को साम्राज्यवादी सरकारो ने
महत्वपूर्ण माना था। इस अवसर पर मौलवी मुहम्मद वर्कतुल
ने कहा था "ससार की दबी हुई, सताई गई और गुलाम कौ
को आजादी के लिए मैं अपनी और पार्टी की सेवाए अपि
करता हू।"

मौलवी बर्कतुल्ला के भाषण का प्रतिनिधियो पर गहरा औ
व्यापक प्रभाव पडा था। यह बात उनके अन्तर्राष्ट्रीय महत्व
उजागर करती है क्योकि गदर पार्टी के अधिकृत प्रतिनिधि
रूप मे उन्होने उक्त घोषणा की थी।

उक्त कान्फ्रेंस के पश्चात नवम्बर, 1927 मे सॉन फ्रासिस
मे गदर पार्टी का सम्मेलन हुआ था। मौलवी बर्कतुल्ला
उक्त सम्मेलन मे आमत्रित किया गया। उस समय मौलवी ब
तुल्ला का स्वास्थ्य खराब था। वह बीमार थे और वहा जाने
उनका स्वास्थ्य उन्हे इजाजत नही दे रहा था, फिर भी वह व
गए। वह गदर पार्टी के प्रारम्भिक सदस्यो मे से थे और
सम्मान से देखे जाते थे। वहा उन्होने ब्रिटिश हुकूमत को गुला
से भारत की मुक्ति के लिए मार्मिक अपील की थी और तब त
सघर्ष जारी रखने को कहा था, जब तक भारत आजाद न
जाए।

गदर पार्टी के उक्त सम्मेलन मे भाग लेने के बाद वह स
बीमार पड गए। उस समय उनकी आयु 65 साल की थी। भू
प्यास, भाग-दौड और जीवन व्यापी सघर्ष ने उन्हे जर्जर क
दिया था। 65 मे से 30 वर्ष उनके एक देश से दूसरे देश
भागते-भागते गुजरे थे। फिर सद्भावनाओ का अभाव, लक्ष्य
प्राप्त न होना यानी भारत को अग्रेज दासता से मुक्त न क

पाना आदि बातो ने उन्हे तोड दिया था। अन्तत 5 जनवरी, 1928 को वह दुनिया से सिधार गए।

भारत की आजादी की लडाई से विमुख करने के लिए कोई लालच, पद उन्हे झुका न सका। एक सेंटीमीटर भी पीछे न हटा सका जबकि उनके आखिरी दिन भारी गरीबी मे कटे। छोटा-सा कमरा, सुविधाओ का अभाव, इलाज के लिए डाक्टर और दवा तक के लिए पैसो का अभाव था।

मरते समय अपने सहयोगियो, साथियो से मौलवी बरकतुल्ला ने कहा था—"तमाम जिन्दगी ईमानदारी के साथ अपने वतन (भारत) की आजादी के लिए मैं कोशिश करता रहा। मेरी यह जबर्दस्त खुश किस्मती है कि मेरी यह नाचीज जिन्दगी मेरे प्यारे वतन के काम आई। मुझे इस बात की तसल्ली है कि मेरे बाद मेरे मुल्क की मदद करने के लिए ऐसे लाखो आदमी आगे बढ रहे होगे जो सच्चे है, बहादुर हैं और जाबाज हैं। मैं इत्मीनान के साथ अपने मुल्क की किस्मत उनके हाथो मे सौंप कर जा रहा हू।"

इस तरह भारत की आजादी का दीवाना, मौलवी मुहम्मद बर्कतुल्ला सॉन फ्रांसिस्को मे सिसकते हुए विदा हुआ। उनकी मृत्यु के समाचार से सारे क्रान्तिकारी शोकातुर हो गए थे और वे ब्रिटिश जासूस खामोश, जो रात-दिन छाया की तरह उनके साथ रहते थे।

हिन्दुस्तान एसोसियेशन सेन्ट्रल यूरोप की ओर से मौलवी बर्कतुल्ला के निधन पर एक शोक सभा का आयोजन किया गया था, जिसमे तुर्की, ईरानी, अफगानी और रूसी, जर्मनी आदि के प्रतिनिधियो ने भाग लिया था। इन सबने उन्हें भारत का महान क्रान्तिकारी बताया था और उनकी मौत को भारत की भारी क्षति भी।

ईरानी प्रतिनिधि ने कहा था—बर्कतुल्ला की मौत हो गई है लेकिन उनकी आजादी की भावना अमर है। वह हमेशा अमर रहेगी। सभी क्रातिकारी अन्तर्राष्ट्रीय होते हैं। कोई भी क्राति एक देश या क्षेत्र तक सीमित नही रहती, उसका प्रभाव

अ तर्राष्ट्रीय होता है और वह तमाम देशो को प्रभावित करती है। इसलिए किसी भी देश के क्रान्तिकारी शहीद को सारी दुनिया के आजाद पसन्द लोग अपना शहीद मानते हैं।

ये शहीद आजादी के उस राजमार्ग का निर्माण करते हैं, जिस पर देर तक दुनिया की सभी कौमो को चलना है। अगर ये क्रान्तिकारी न होते तो दुनिया एक अधेरी कोठरी बन जाती।

सोवियत प्रतिनिधि ने कहा था—भारत के स्वतन्त्रता-सग्राम के साथ सोवियत की पूरी सहानुभूति है। आजादी की लडाई मे काम आने वाले हर शहीद की हम इज्जत करते है। सोवियत देश के प्रतिनिधि की हैसियत से मैं मौलवी बर्कतुल्ला की मृत्यु पर अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि पेश करता हू।

इस तरह विदेशी प्रतिनिधियो ने मौलवी मुहम्मद बर्कतुल्ला के सम्मान मे अपने उद्‌गार प्रकट किए थे। स्व० प० जवाहरलाल नेहरू ने ब्रुसेल्स मे उनसे हुई मुलाकात का बडा रोचक तथा सम्मानजनक वर्णन किया है अपनी पुस्तक—मेरी कहानी—मे।

ऐसे लोगो-शहीदो यानी क्रातिकारियो के हम भारतीय युगो तक ऋणी रहेंगे, यदि हम मे थोडी-सी भी समझ होगी।

राजनीति, कूटनीति के धनी मौलाना मुहम्मद मिया अन्सारी

सन् 1946 की 13 जनवरी को 66 साल की आयु मे जलालाबाद मे मृत्यु की बाहो मे जकडे गए मौलाना मुहम्मद मिया अन्सारी को भुलाना भी उस क्रातिकारी, देशभक्त के साथ अन्याय होगा, जिसने अग्रेज हकूमत को लोहे के चने चबवाए थे और तीन बार फासी की सजा मिलने पर भी मौत के फन्दे की गिरफ्त से बच निकला था।

भारत से अ ग्रेज शासन को उखाड फेकने के लिए काम करने वाले मुसलमान क्रान्तिकारियो मे वह अग्रिम पक्ति के क्रान्तिकारी थे। गालिबनामा पत्र को मदीना मे काबुल(अफगानिस्तान) पहुचाने वाले मौलाना मुहम्मद मिया अन्सारी ही थे।

काबुल आकर वह वहा की राजनीति मे सक्रिय हो गए। *अमीर हबीबुल्ला खा अग्रेज परस्त था, जो उस समय अफगानिस्तान* का शासक था। मौलाना मुहम्मद मिया ने जब उससे अग्रेज-परस्ती छोडने को कहा तो वह आग बबूला हो गया।

मौलाना मुहम्मद मिया जिस उद्देश्य के लिए मदीना से वहा के शासक का पत्र अफगानिस्तान के अमीर के नाम लाए थे, अमीर की अग्रेज-परस्ती से वह उद्देश्य ढहता देख, वह अमीर का तख्ता उलटने के लिए सक्रिय हो गए। इधर अग्रेजो ने अमीर हबीबुल्ला से मौलाना मुहम्मद मिया अन्सारी की गिरफ्तारी की आज्ञा मागी और अमीर ने फौरन ही उन्हे आज्ञा दे दी।

उक्त आशय का जो पत्र अग्रेजो को भेजा गया था, यदि उसे अग्रेजो के पास पहुचने से पहले ही अमीर के भाई नसरुल्ला खा, जो उस समय अफगान प्रधानमत्री थे, मौलाना अन्सारी को

शाही महल से हटाकर अपनी कार द्वारा अफगानिस्तान की उत्तरी पहाडियो पर न भिजवा देते तो मौलाना मुहम्मद मिया अ ग्रेजो के शिकजे मे आकर मौत के घाट उतार दिए गए होते।

उन पहाडो पर निरन्तर 23 दिन पैदल चलने के बाद वह बुखारा की सीमा पर पहुचे। इस दौरान वह कई दिन बिना भोजन और पानी के तडपते रहे।

बुखारा मे प्रविष्ट होने के लिए उनके पास अनुमति पत्र तो था नही, अत कई दिनो तक मौके की तलाश मे उन्हे सरहद पर रहना पडा। आखिर, अवसर मिलते ही वह एक दिन बुखारा मे प्रविष्ट हो गए। लुक छिपकर वह वहा दिन गुजारते रहे।

उधर काबुल मे अमीर हबीबुल्ला खा की हत्या कर दी गई और शाह अमानुल्ला वहा के शासक बने तो उन्होने मौलाना मुहम्मद मिया अन्सारी को वापस काबुल बुलवाया। सन् 1919 मे जब शाह अमानुल्ला ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की तो अन्सारी ने सरहदी कबीलो द्वारा शाह अमानुल्ला की काफी सहायता की। हाजी तुरग जई, जो फकीर इपी के गुरु थे और उत्तरी वजीरिस्तान के आजाद कबीलो ने, जिनसे मौलाना अन्सारी अच्छी तरह परिचित थे, अग्रेजो के विरुद्ध सख्त लडाई लडी। परिणामस्वरूप अग्रेज पस्त हो गए और काबुल की विदेश नीति से उनका प्रभुत्व समाप्त हो गया।

उक्त घटना के पश्चात काबुल सरकार ने उन्हे अगोरा के दूतावास म वजीर मुख्तार नियुक्त किया। अफगान गृहमत्री, जनरल मुहम्मद गुल खा भी उक्त दूतावास के सदस्य थे। बताया जाता है कि एक बार सैर-सपाटे मे अ गोरा दूतावास के सारे सदस्य रूस के जगल मे पकडे गए और उन्हे ताशकन्द जेल मे बन्द कर दिया गया। इनमे मौलाना मुहम्मद मिया अन्सारी भी थे। सब पर मुकदमा चलाया गया, फासी की सजा सुना दी गई।

बेचारे मौलाना अन्सारी फासी के दिन की प्रतीक्षा मे थे कि अचानक ताशकन्द के सरदार (जनरल) अब्दुल रसूल पर मौलाना का जबर्दस्त प्रभाव पडा और उसने रूसी सरकार से कहकर उन्हे फासी से छुटकारा दिलवा दिया।

ताशकन्द जेल मे तीन महीने रहने से उ हे रूस की राजनीति की काफी जानकारी हासिल हो गई थी, अत जब वह काबुल लौटे तो अफगान सरकार ने एक 'सदभावना समिति' का सदस्य बनाकर उन्हे रूस यात्रा पर भेजा। वहा मास्को मे उन्होने लेनिन तथा अन्य नेताओ से विचार-विमर्श कर अफगान रूस राजनीतिक सम्बन्ध कायम करवाए।

सन् 1921 मे दोबारा मौलाना मुहम्मद मिया अन्सारी को अगोरा स्थित अफगान दूतावास मे मुख्य अधिकारी नियुक्त किया गया। तुर्की के राष्ट्रीय-उत्सव मे वह अफगान राजदूत की हैसियत से शामिल हुए थे। इस अवसर पर तुर्की के क्रातिकारी काजिम कुर्रा, वकर पाशा, जमालपाशा रअफबे और अली शकरीबे आदि से सम्बन्ध बनाए जिससे उन्हे मुस्तफा कमाल पाशा की मित्रता से वचित होना पडा।

सन 1922 मे तुर्की सरकार के आग्रह पर मौलाना अन्सारी को अफगान तुर्की के मध्य शाही सन्देशवाहक नियुक्त किया गया। अफगान विदेश-विभाग मे उनको पुन नियुक्त किया गया। अफगान शिक्षा-विभाग के निदेशक पद पर भी उन्होने कार्य किया। यह सब उनकी योग्यता एव प्रतिभा के सूचक है।

सन् 1929 मे अग्रेजो ने काबुल मे शाह अमानुल्ला खा के विरुद्ध विद्रोह भडका कर शाह अमानुल्ला से काबुल छुडवा दिया। तब पेशेवर डाकू बच्चा सक्का अग्रेजो की मदद से काबुल की गद्दी पर बैठा। उसने मौलाना मुहम्मद मिया अन्सारी को अफगान पार्लियामेट का अध्यक्ष पद ग्रहण करने को कहा। लेकिन मौलाना अन्सारी अग्रेज पिट्ठू बच्चा सक्का और अग्रेज षडयन्त्र को भली-भाति समझते थे, अत उन्होने अध्यक्ष बनने से इन्कार कर दिया। बच्चा सक्का को बुरा-भला भी कहा, तब बच्चा सक्का ने मौलाना मुहम्मद मिया अन्सारी को फासी पर लटकाने का हुक्म दे डाला।

मौलाना मुहम्मद मिया अन्सारी साहस के धनी और प्रतिभा के भडार थे, अत यो ही फासी पर लटकना उन्हे पसन्द न था। वह एक दिन चुपचाप काबुल से खिसक गए और भारत की सीमा

पर आजाद कबीलो के बीच रहने लगे। वह जगह बाजोड थी, जहा वह काफी समय रहे।

कुछ समय पश्चात जब जनरल नादिर खा ने बच्चा सक्का के विरुद्ध युद्ध शुरू किया तो मौलाना अन्सारी ने उन्ही आजाद कबीलो से नादिर खा की बडी सहायता करवाई। जब अफगानिस्तान मे अमन-चैन बहाल हो गया तो वह फिर काबुल चले गए।

मौलाना मुहम्मद मिया अन्सारी मौजूदा अफगानिस्तान के निर्माता माने जाते है। अफगानिस्तान सरकार के विभिन्न उच्च पदो पर रहने के कारण उन्होने निर्वासित भारतीय क्रातिकारियो की कई बार आर्थिक सहायता भी की। मौलाना अब्दुल हन्नान अमृतसरी और मौलाबख्श नगीनवी को तो उन्होने अफगान दूतावास मे रहने की मजूरी दी थी।

सन् 1937 मे भारत के सात प्रातो मे काग्रेस-मन्त्रि-मडल बनने पर उन्हे वापस भारत आने को कहा गया, लेकिन उन्होने न प्रार्थना-पत्र लिखा और न भारत आए। अग्रेजो से उन्हे सख्त नफरत थी और वह समझते थे कि अग्रेज मक्कार है। वह कहा करते थे

जिसकी सत्ता के विरुद्ध लडते रहने मे ही हम अपने अस्तित्व की सार्थकता अनुभव करते हैं, उससे किसी रियायत की माग करना तो आत्महत्या के समान है।

तत्कालीन बडे-बडे राजनीतिज्ञ उनकी प्रतिभा से चमत्कृत थे और उन्हे अपना गुरु मानते थे। अफगान सरकार के विदेश विभाग के मन्त्री आकाई फैज मुहम्मद खा उन्ही मे से एक थे।

जलालाबाद की खामोश पहाडियो मे खामोश सोया मौलाना मुहम्मद मिया अन्सारी अग्रेज सत्ता को उखाडने के लिए अरब देशो और रूस को एक गठजोड मे बाधना चाहता था, लेकिन वह सुनहरा ख्वाब पूरा न हो सका। फिर भी उस क्रातिकारी की कुर्बानी को भुलाना एक महान क्रातिकारी के प्रति बहुत बडी बेइन्साफी होगी।

अद्भुत क्रान्तिकारी
मौलाना उवेदुल्ला सिंधी

सन् 1915-16 मे भारत के क्रांतिकारियो ने काबुल मे भारत की जो अस्थायी आजाद सरकार बनाई थी, उसके अध्यक्ष राजा महेन्द्र प्रताप थे और प्रधानमत्री मौलाना उवेदुल्ला सिंधी।

मौलाना उवेदुल्ला सिंधी 15 अक्तूबर 1915 को काबुल पहुचे थे। वह वहा सात साल सात दिन रहे। वह कट्टर देश-भक्त और गुरु भक्त भी थे। जब उनके गुरु मौलाना मुहम्मद उल-हुसन ने सिंधी से कहा—काबुल चलो तो उनका कहना था—क्यो ? इसी तरह दोबारा भी हुआ और तीसरी बार मौलाना मुहम्मद उल-हुसन के काबुल चलो—कहने पर वह चुपचाप राजी हो गए।

लेकिन काबुल जाना इतना आसान न था क्योकि पास मे कोई छोटी-मोटी रकम तो थी ही नही। तब शेख अब्दुर्रहीम की बेगम और बेटियो ने अपने गहने बेचकर उन्हें मार्ग व्यय दिया।

दो महीने मे वह काबुल (अफगानिस्तान) की सीमा पर पहुचे और कंधार (गाधार) होते हुए काबुल पहुचे। उन दिनो काबुल मे अमीर हबीबुल्ला की सरकार थी। हबीबुल्ला दो मुही नीति पर चल रहा था। एक ओर वह इण्डो-जर्मन, टर्किश मिशन के सदस्यो से मिलकर भारत मे अंग्रेज हकूमत के विरुद्ध युद्ध की योजना बना रहा था और युद्ध के लिए उक्त मिशनो से खूब रुपया ऍठ रहा था, तो दूसरी ओर वह उन तमाम योजनाओ को लिख कर अंग्रेजो को दे रहा था। बदले म वह उनसे भी मोटी रकम वसूलता था।

प्रधानमत्री नसरुल्ला खा, जो अमीर के भाई थे, मौलाना उवेदुल्ला सिंधी को बहुत चाहते थे, इसलिए नसरुल्ला खा की

मदद से वहा 'वजूनुदुल्ला' नामक सस्था स्थापित की गई, जो राजनीतिक गतिविधियो का सचालन करती थी। बाद मे यह सस्था अस्थायी आजाद भारत सरकार मे विलीन कर दी गई।

इसी दौरान भारत मे अग्रेजो के विरुद्ध जग छेडने सम्बन्धी पत्र, जो मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी और मौलाना मन्सूर ने मक्का स्थित मौलाना मुहम्मद-उल-हसन को किन्ही हाथो भिजवाए थे, वे खान बहादुर हकनवाज खा के हाथो मे पड गए और उसने उन पत्रो को सर माइकेल ओडायर को थमा दिया।

उक्त घटना के घटते ही मक्का मे मौलाना मुहम्मद-उल-हसन को गिरफ्तार कर लिया गया। जो लोग मुसलमान देश भक्त, क्रातिकारियो से अपरिचित हैं, उन्हे उनकी कुर्बानी और काम की महत्ता समझने की जरूरत है।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर, जो सन् 1918 मे खत्म हुआ, काबुल स्थित अस्थायी आजाद भारत सरकार भग कर दी गई। मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी एक ऐसे कमरे मे नजरबन्द कर दिए गए जिसमे मुश्किल से दस आदमी रखे जा सकते थे, किन्तु उसमे पच्चीस आदमी नजरबन्द थे। इस बात की शिकायत जब आला अधिकारी से की गई तो उसने मौलाना उबेदुल्ला को एक बाग मे तम्बू लगवाकर उसमे भेज दिया।

इसी मध्य अमीर हबीबुल्ला खा, काबुल के शासक की हत्या कर दी गई और शाह अमानुल्ला शासक बन गए। अमानुल्ला ने मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी को नजरबन्दी से मुक्त कर दिया।

अफगान शासक शाह अमानुल्ला मौलाना उबेदुल्ला सिंधी का बहुत आदर करता था, इसलिए राज-काज मे भी उनसे सलाह-मशवरा लिया करता था। सन् 1919 मे अफगानिस्तान ने, भारत के पश्चिमी सीमान्त प्रात पर आक्रमण भी मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी की प्रेरणा और योजना के अनुसार ही किया था।

जनरल नादिर खा की बडी सेना के साथ सरहद के कबीलो के शामिल हो जाने से अग्रेज अधिकारी घबरा गए। मौलाना उबेदुल्ला के साथी, सहयोगी मौलाना जफर हुसेन ने, जो लाहौर

से काबुल गए थे, कबीलो को प्रोत्साहित करने मे महान योगदान किया था।

अग्रेजो की हवाई बम वर्षा और सरहद के कबीलो का काबुल का साथ देना, दोनो बराबर की टक्कर थी। अन्तत अग्रेजो को काबुल से सधि करनी पडी। यद्यपि काबुल की विदेश नीति की स्वतन्त्रता अग्रेज मान गए, लेकिन उन्होने काबुल मे मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी की राजनीतिक गति विधियो पर प्रति बन्ध की शर्त भी सधि पत्र मे जोड दी।

शाह अमानुल्ला, जो उसी दौरान गद्दी पर बैठे थे, अपनी सत्ता की खातिर उन शर्तो को मान गए, जो भारतीय मुसलमान क्रातिकारियो के सम्बन्ध मे निषेधात्मक थी। यह सन्धि 8 अगस्त 1922 को हुई थी।

अन्तत सात साल तक काबुल मे अबाध रूप से राजनीतिक गतिविधियो को सचालित करने वाले मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी को काबुल छोडना पडा। यह घटना सन् 1922 के 22 अक्तूबर की है। रूसी तुर्किस्तान होते हुए वह मास्को पहुचे और वहा सात मास तक उन्होने कम्युनिज्म का अध्ययन किया। वहा से भी वह अगोरा चले गए और वहा तुर्की के जन-जागरण को समझा, जाना। साथ ही पेन इस्लामिक आन्दोलन का भी उन्होने बारीकी से अध्ययन किया। तब उन्होने अपनी गति-विधियो को काग्रेस आदोलन मे विलीन करने की ठानी।

वहा से उन्होने हिन्दुस्तान के मुसलमानो से काग्रेस आदोलन मे बढ चढ कर हिस्सा लेने की अपील की। पत्रक छपवाकर भिजवाए, जो उर्दू अग्रेजी—दोनो भाषाओ मे थे। तीन वर्ष तक तुर्की मे रहने के बाद वह इटली चले गए।

इटली मे मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी की भेंट स्व० जवाहर लाल नेहरु से हुई। दोनो मे खूब विचार विनिमय हुआ। अपने विगत जीवन की हलचलो से भी जवाहरलाल नेहरु को उन्होने अवगत कराया।

स्व० नेहरु ने अपनी कहानी मे लिखा है।

—'इनके अलावा एक मौलवी उबेदुल्ला सिन्धी थे, जो कुछ

समय के लिए मुझसे इटली मे मिले थे। हिन्दुस्तान के सयुक्त राज्यो या हिन्दुस्तान के सयुक्त प्रजातत्र की उन्होने एक योजना बनाई थी, जो हिन्दुस्तान की साम्प्रदायिक समस्या को हल करने की काफी अच्छी कोशिश थी।'

कहने का मतलब यह है कि स्व० जवाहरलाल नेहरु भी मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी की प्रतिभा के कायल थे। एक दूसरी जगह पर भी नेहरु ने उनकी तारीफ की है।

जब लाला लाजपतराय ने मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी पर मुस्लिम देशो द्वारा भारत पर अधिकार करवाने की साजिश का आरोप लगाया था, तो स्व० जवाहरलाल नेहरु ने कहा था और मेरी कहानी मे लिखा है

—'मुझे याद है कि जब मैंने स्वीटजरलैंड मे हिन्दुस्तानी अखबारो मे लाला जी के इल्जामो को पढा तो मैं दग रह गया।'

यानी भारत के मुसलमान, जो क्रातिकारी थे, इस्लाम के पक्के अनुयायी होने के बावजूद सही मायने मे भारतीय थे, देशभक्त थे।

सन् 1936 मे जब काग्रेस सात प्रातो मे सत्ता मे आई तो सिन्ध प्रात के मुख्यमन्त्री स्व० अल्लाबख्श ने मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी को भारत लौटने की सूचना भेजी।

इससे पूर्व वह हेजाज मे बसने के इच्छुक थे। वहा रहते उन्होने एक मदरसा भी चलाया था। राजनीतिक गतिविधियो पर पाबन्दी थी। लेकिन उक्त सूचना व पासपोर्ट मिल जाने पर वह मार्च, 1939 मे भारत लौट आए।

भारत आते ही मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी ने घोषणा की कि मैं पहले भी काग्रेसी था और अब भी। वह भारत के मुसलमानो को तुर्की के मुसलमानो जैसा जीवन बनाने की बात करते तो लीगी मुसलमान खफा होते थे। अन्य मौलवी भी उनसे सहमत न थे।

मौलाना उबेदुल्ला ने कहा था—भारत के नौजवान मुसलमानो को तहमद तथा पायजामे की जगह नेकर पेंट अपनानी चाहिए, सेना मे भर्ती होना चाहिए, शिक्षित बनना चाहिए।

टोप पहनकर नमाज अदा करनी चाहिए।

ये सब बातें हिन्दुस्तान के मुसलमान मजूर करने को तैयार न थे, अत मौलाना उबैदुल्ला भारत तो लौट आए, लेकिन मौत आने तक तग हालत मे ही रहे। जिन दिनो वह दिल्ली के ओखला मे रह रहे थे, उनके पास दिल्ली आने के लिए बस किराया तक न होता था और वह दस किलोमीटर पैदल चलकर दिल्ली आते थे।

मोटा खद्दर का कुर्ता, पायजामा और सर पर अगोछा यही उनकी पोशाक थी। हाथ मे लम्बी लाठी का सहारा लिए, बिल्कुल किसान की तरह जिन्दगी बिताने वाले मौलाना उबैदुल्ला सिन्धी को देखकर यह अनुमान लगाना आसान नही था कि वह एक महान देश भक्त क्रातिकारी हैं।

सन 1944 के 21 अगस्त को रियासत बहावलपुर (भावल पुर) के दीनपुर स्थान पर क्राति का वह अनुपम योद्धा सदा के लिए सो गया, जिसने कभी अफगानिस्तान के निर्माण मे और भारत की स्वतन्त्रता के सग्राम मे अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

वतन और इस्लाम के रहनुमा मौ० हुसैन अहमद मदनी

भारत से अंग्रेज हुकूमत को उखाडने मे जिन क्रातिकारी एव देशभक्त मुसलमानो ने सक्रिय भूमिका अदा की थी, उनमे मौलाना हुसैन अहमद भी एक प्रमुख नाम है। बाद मे मक्का मदीना मे धार्मिक दीक्षा-शिक्षा देने के कारण मौलाना हुसैन अहमद 'मदनी कहलाने लगे और फिर मदनी के नाम से ही विख्यात हो गये।

मौलाना हुसैन अहमद मदनी के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि इस्लामी-दर्शन का बारीकी से ज्ञान रखने वालो मे, भारत मे मौलाना अबुल कलाम आजाद के बाद मौलाना मदनी का स्थान दूसरा था। साथ ही वह बहुत बडे साधक भी थे। उनके शिष्यो की एक पूरी मडली थी। उन शिष्यो मे कई मुस्लिम लीगी भी थे फिर भी वे मौलाना मदनी पर बेहद श्रद्धा रखते थे।

मौलाना हुसैन अहमद मदनी का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद के बागरमऊ मे सन् 1877 मे हुआ था। उनके पिता मौलवी हबीबुल्ला अत्यत धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। शाह वली उल्लाई दशन से उनका गहरा सम्बन्ध था, इसलिए बारह साल की आयु मे उन्होने हुसैन अहमद को देवबन्द के दारुल-उलूम मे दाखिल करा दिया था।

उस समय मौलाना रशीद अहमद गगोही जीवित थे, किन्तु प्रधानाध्यापक मौलाना मुहम्मद-उल-हसन चुन लिए गए थे। किशोर हुसैन अहमद को देखते ही वह भाप गए थे कि यह बालक भविष्य मे एक चमकदार सितारा सिद्ध होगा, अत उन्होने किशोर हुसन अहमद की शिक्षा-दीक्षा मे विशेष रुचि ली थी।

सात साल देवबन्द मे शिक्षा ग्रहण करने के बाद स्नातक बनने पर वह अपने परिवार के साथ मक्का चले गए। चलते

समय मौलाना रशीद अहमद गगोही ने, जो हुसैन अहमद के आध्यात्मिक गुरु भी थे, से कहा—मक्का मे इमाम हाजी इमदादुल्ला से जरूर भेंट करना। वह वली उल्लाई दर्शन के चौथे इमामथे और मक्का मे निर्वासित जीवन गुजार रहे थे।

वहा हुसैन अहमद ने उनसे कुछ दिन इस्लामी-दर्शन का अध्ययन किया। कुछ समय मक्का मे रहने के बाद उनका परिवार मदीना चला गया। हुसैन अहमद भी परिवार के साथ वहा चले गए। इस्लामी दर्शन की व्यापक परिभाषा और उसके स्वरूप का विस्तृत विवेचन के कारण वह वहा के विद्वानो म बडे लोकप्रिय हुए और तभी उनके नाम के साथ 'मदनी' शब्द जुडा।

मदीना मे मौलाना हुसैन अहमद मदनी ने मदरसा खोलकर कुरआन की शिक्षा दी। बाद मे किन्हीं कारणो से उन्हे वह मदरसा बन्द कर देना पडा। उन दिनो उनके पिता के पास भी पैसा खत्म हो गया, अत परिवार के बारह तेरह आदमी आधे पेट दाल पीकर जिंदा रह रहे थे। लोगो का मानना है कि वह कुरआन के माध्यम से आजादी और देशभक्ति का प्रचार करते थे।

उन्ही दिनो उनसे वह मकान भी मकान मालिक ने खाली करवा लिया, जिसमे वे लोग रह रहे थे। कुछ दिन कच्ची ईंटो की झोपडी मे गुजारे। मौलाना हुसैन अहमद मदनी के पिता अपने पुत्रो से हिन्दुस्तान लौटने को कहते थे, लेकिन उन दुर्दिनो मे माता-पिता को छोडकर भारत आना उन्होने उचित न समझा।

बाद मे मौलाना हुसैन अहमद मदनी के एक शिष्य ने उन्हें कुछ रुपये भेंट किए, जिससे उनके परिवार ने खजूरो का व्यापार करके अपनी आर्थिक दशा सुधार ली। मौलाना हुसैन अहमद मदनी ने निजी मकान बन जाने पर फिर से पढाने का काम शुरू कर दिया और उनकी योग्यता से प्रभावित होकर उन्हे 'शेख-उल-हरम' के नाम से पुकारा जाने लगा।

मौलाना मुहम्मद-उल-हसन के सन् 1915 मे मक्का पहुचने के बाद से वहा रहने तक मौलाना हुसैन अहमद मदनी उनकी सेवा मे ही व्यस्त रहे। माल्टा मे नजरबन्दी के दौरान मदनी साहब के माता-पिता, भाई, स्त्री, पुत्र मौत के ग्रास बन गए,

लेकिन गुरु की सेवा मे उन सदमो की उन्होने तनिक भी परवाह नही की।

मौलाना मुहम्मद-उल-हसन को जब मक्का मे गिरफ्तार किया गया था, उस समय मौलाना हुसैन अहमद मदनी को मुक्त कर दिया गया था परन्तु गुरु सेवा के कारण ही वह माल्टा की जेल मे नजर वन्द रहे।

मौलाना मुहम्मद-उल-हसन की मृत्यु के पश्चात मौलाना हुसैन अहमद मदनी भारत वापस आ गए और उन्होने देववन्द मे राजनैतिक नेतृत्व अपने हाथो मे ले लिया। उन्होने फतवा दिया कि सरकारी फौज मे मुसलमानो का रहना हराम है, इसलिए उन्हे दो साल की सजा दी गई। वह कराची जेल मे वद किये गये जहा उन्होंने असीरे माल्टा (माल्टा का कैदी) नामक पुस्तक लिखी। यह समय असहयोग-आन्दोलन का था।

कराची जेल से मुक्त होने के वाद मौलाना हुसैन अहमद मदनी सिलहट(आसाम)मे जामिया इस्लामिया स्कूल मे हदीस के शिक्षक नियुक्त हुए। वह वहा पर शिक्षारत ही थे कि देववन्द मे एक प्रधान शिक्षक की जरूरत महसूस की गई। मौलाना मदनी से प्रधानाध्यापक पद स्वीकार करने को कहा गया। उन्होने सशर्त प्रधानाध्यापक बनना स्वीकार कर लिया।

शर्तें थी—राजनीतिक कार्य करने की छूट, एक निश्चित समय तक वेतन सहित और उसके वाद अवैतनिक स्कूल से अनुपस्थित रहने की छूट। स्कूल के पदाधिकारियो द्वारा राजनीतिक कार्यों मे दखल न देने की शर्त।

उक्त शर्तों के साथ मौलाना मदनी ने देववन्द मे मुख्याध्यापक पद पर भी कार्य किया। इस दौरान देववन्द दारुल-उलूम की प्रबन्ध समिति के कुछ मुस्लिम लोगी सदस्यो ने उन्हे उनके पद से हटाने की भी पूरी कोशिश की लेकिन उनकी योग्यता, प्रतिभा उनका साथ देती रही।

राष्ट्रीय मुसलमानो का सगठन जमय्यत उल-उलेमा के प्रधान सचालको मे भी वह रहे। कई वार अध्यक्ष बने। हिन्दु-मुस्लिम एकता और भारत की स्वतन्त्रता ही मौलाना हुसैन अहमद मदनी की एकमात्र इच्छा, आकाक्षा थी।

राष्ट्र-प्रजा भक्त नवाब मीर कासिम

भारत को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कुराज से छुटकारा दिलाने मे शाह आलम द्वितीय द्वारा बिहार, बगाल तथा उडीसा की बागडोर मीर कासिम को सौंपने के बाद उसने कम्पनी की मक्कारियो और सेना से डटकर मुकाबला किया था। उक्त तीनो सूबो का नवाब होते हुए भी उसकी धमनियो मे देश-भक्ति का खून दौड रहा था। वह अपनी प्रजा का उत्पीडन सहन करने को तैयार न था।

जहा भारत को अग्रेजो की दासता मे जकडवाने के लिए भारत के लोग सदियो तक मीर जाफर को कोसते रहेगे, वहा भारत को अग्रेज दासता से मुक्त करवाने के लिए जीतोड कोशिश करने वाले मीर कासिम को सदियो तक याद रखेंगे।

सम्राट् शाह आलम द्वितीय ने मार्च, 1761 मे उक्त तीनो क्षेत्रो को मीर कासिम को, सौपा था। यानी मीर कासिम को सूबेदार बनाया था। यद्यपि बगाल मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने पाव काफी फैला चुकी थी और वह कई छोटे-मोटे सामन्त, नवाबो को निगल चुकी थी। ईस्ट इण्डया कम्पनी के अग्रेज अधिकारी और साधारण अग्रेज भी मनमानी करने लगे थे, फिर भी उनके मन मे दिल्ली के सम्राट् का भय था।

शाह आलम द्वितीय का प्रतिनिधि होने के कारण अग्रेज मीर कासिम को कब्जे मे रखना जरूरी समझते थे, अत बगाल की सूबेदारी से वचित मीर जाफर को वे मीर कासिम का प्रधानमत्री बनवाने का षडयन्त्र भी रच रहे थे।

इसमे शक नही कि मीर जाफर अयोग्य, कमजोर, अदूरदर्शी, भीरु तथा स्वार्थी, था जबकि मीर कासिम मे वीरता, दूर-

दर्शिता तथा प्रशासनिक क्षमता, कार्य कुशलता आदि सब शासकोचित गुण विद्यमान थे।

कर्नल मालेसन ने मीर कासिम को मीर जाफर की श्रेणी मे रखने का विरोध किया है। वह लिखता है—

—मीर कासिम को मीर जाफर के साथ देश घातको की श्रेणी मे रखना मीर कासिम के साथ अन्याय करना है।

इतिहासकार मालेसन आगे लिखता है--

--मीर कासिम का इरादा मीर जाफर के साथ विश्वासघात करने का न था। वह अपने बूढे श्वसुर की मान-मर्यादा को फिर से बहाल करना चाहता था।

मीर कासिम ने गद्दी पर बैठते ही बगाल मे अनेक प्रशासनिक सुधार के कार्य किए। उसे उन कामो मे सफलता भी मिली। मीर कासिम ने माल और खजाने के महकमो की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया और सन् 1762 तक उसने अपनी फौजो के वेतन का पिछला बकाया भी चुका दिया। उसके श्वसुर मीर जाफर की वजह से अग्रेजो का ऋण, जो मीर कासिम की सूबेदारी पर डाला गया था, वह भी उसने अदा कर दिया था। इतना ही नही, मीर कासिम की आमदनी सालाना खर्च से ज्यादा हो गई थी।

मीर कासिम ने मुर्शिदाबाद की बजाय मुगेर को अपनी राजधानी बनाया और मुगेर की सख्त किलेबन्दी की थी। वह 40 हजार सेना हर वक्त मुगेर मे रखता था। उसकी प्रजा मे समृद्धि और विश्वास का वातावरण लौट आया था। लेकिन अग्रेज मीर कासिम की तरक्की पसन्द नीति से बौखला उठे और अग्रेजो के साथ उसका व्यवहार ठीक होने पर भी वे उसे सूबेदारी से हटाने पर आमादा हो गए।

कम्पनी के अग्रेजो का आरोप था कि मीर कासिम अपनी फौज की तादाद बढा रहा है, उन्हे यूरोपियन ढग के अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित कर रहा है और उसी किस्म की ट्रेनिंग दे रहा है तथा नई-नई किलेबन्दिया कर रहा है।

उधर मीर कासिम ने कलकत्ता स्थित काउन्सिल से बार-

बार यह शिकायत की कि अंग्रेज व्यापारी बिना महसूल दिए व्यापार करते हैं जिससे नवाबी की आय घट रही है। मनमाने भावों पर अपना सामान बेचते हैं और मनचाहे दामों पर प्रजा से सामान खरीदते हैं, जिससे सारा व्यापार चौपट हो गया है। हिन्दुस्तानी व्यापारी कगाल होते जा रहे हैं।

नवम्बर, 1762 को गवर्नर वन्सीटार्ट और लार्ड वारेन हेस्टिंग्स नवाब मीर कासिम से भेंट करने मुगेर पहुचे। तब मीर कासिम ने उनसे कहा—जब मैं बिहार की ओर आया था तो बगाल मे अगरेजों ने गाव-गाव, घर-घर लूटपाट की। लगान की वसूली रोक दी, जिससे एक करोड रुपये का नुकसान हुआ।

उसी समय मुगेर मे नवाब मीर कासिम और गवर्नर वन्सीटाट व वारेन हेस्टिंग्स के बीच एक सधि हुई थी, जो मुगेर सधि पत्र के नाम से जानी जाती है। उस सधि पत्र मे अंग्रेज व्यापारियो से नमक, तम्बाकू तथा सुपारी आदि पर नौ फीसदी कर देने का प्रावधान था और हिन्दुस्तानी व्यापारियो से पच्चीस प्रतिशत कर देने को कहा गया था।

नवाब मीर कासिम उक्त दोगली नीति से सहमत न था, लेकिन उसे प्रजा मे शाति की खातिर मजबूरन उस सधि-पत्र पर दस्तखत करने पडे।

मीर कासिम के विरुद्ध षडयन्त्र

गवर्नर वन्सीटार्ट ने कलकत्ता पहुच कर सधि के पालन करवाने के बजाय अंग्रेजो की धीगा मुश्ती कायम रखते हुए जगह-जगह अपनी फौजें भेजनी शुरू कर दी। साथ ही अंग्रेज एजेन्टो और कोठियो पर सन्देश भिजवाया कि मुगेर सधि पर अमल न किया जाए। यदि नवाब मीर कासिम के अधिकारी, कर्मचारी अमल करवाने की कोशिश करें तो उन्हें सबक सिखाया जाए। मुगेर सधि-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए गवर्नर वन्सीटार्ट ने नवाब मीर कासिम से सात लाख रुपये रिश्वत ली थी।

मीर कासिम ने हिन्दुस्तानी व्यापारियो से चुगी वसूलना बन्द करवा दिया। अपने राज्य मे चुगी चौकिया हटवा दी,

जिससे भारतीय व्यापारियो ने फायदा उठाया। यद्यपि मीर कासिम के राजस्व मे पर्याप्त कमी हुई फिर भी वह अग्रेजो के अत्याचारो की अग्रेज काउन्सिल और गवर्नर वन्सी टार्ट को लिख-लिख कर शिकायतें भेज रहा था लेकिन मक्कार अग्रेज कौम मीर कासिम को नवाबी से हटाने पर कमर कस चुकी थी।

अप्रैल 1763 मे अग्रेजो ने मीर कासिम से युद्ध लडने के लिए अपनी सेना को आदेश दिया। हथियारो से लदी कई नावें नदी मार्ग से पटना भेजी। पटना मे एक अग्रेज एजेंट एलिस रहता था। उसे पत्र द्वारा सूचित किया गया कि काफी हथियार और फौज पटना पहुच चुकी है इसलिए तुम पटना पर कब्जे की तैयारी करो।

चालाक अग्रेजो ने एमयाट को मीर कासिम से दूसरी सधि के लिए मुगेर भेजा ताकि मीर कासिम सधि मे उलझा रहे और पटना पर कब्जा कर लिया जाए।

उधर मीर कासिम नई सधि के लिए तैयार न था। उसका कहना था—जब पुरानी सधियो पर ही अमल नही हो रहा है, तो नई सधि से क्या होगा ? फिर भी 2 जून, 1763 को मीर कासिम ने गवर्नर व-सीटार्ट को पत्र लिखा कि आप पटना से अपनी फौज को वापस बुला ले। यदि फौज को रखना ही है तो मुगेर मे रख लें अन्यथा मैं निजामत छोड दूगा।

यही बात मीर कासिम ने एमयाट और अग्रेजो से भी कही। जवाब मे उन्होने कहा—पटना से फौज वापस नही, बल्कि और भेजी जाएगी।

हथियारो से लदी नावे जब मुगेर से पटना की तरफ जा रही थी, तो मीर कासिम ने उन्हे रुकवा दिया। गवर्नर वन्सीटाट और दूसरे अग्रेज तो बहाने की तलाश मे थे, फौरन एलिस ने पटना शहर पर हमला कर दिया। अडतालीस घटे तक लूटपाट, कत्लेआम चलता रहा और पटना के किले पर कब्जा कर लिया गया।

उधर एमयाट चुपके से नाव मे बैठकर कलकत्ता रवाना हो गया। मीर कासिम के एक कर्मचारी मुहम्मद तकी खा ने कासिम

बाजार के समीप एमयाट को खाना खिलाने के बहाने नाव से उतारना चाहा लेकिन उसने इनकार कर दिया। दोबारा फिर एक अन्य कर्मचारी ने एमयाट से खाना खाने का आग्रह किया, वह फिर भी नही माना। अन्तत उसने मीर कासिम के आदमियो पर नाव से गोलिया बरसानी शुरु कर दी। तब कुछ लोग नाव द्वारा उसकी नाव तक पहुचे और एमयाट को मार दिया।

28 जून, 1763 को नवाब मीर कासिम ने वन्सीटार्ट गवर्नर और काउन्सिल के नाम एक पत्र भेजा, जो सात जुलाई को कलकत्ता पहुचा। उसमे मीर कासिम ने लिखा था—

—मिस्टर एलिस ने पटना शहर को लूटा और सैकडो लोगो की हत्यायें की। अच्छा हो कि नगर के लोगों का लूटा माल अग्रेज वापस कर दें। आपने अपनी फौज के खर्च चलाने के लिए मुझसे इलाके लिए, जो मेरे विनाश की साजिश थी। अब उन इलाको को चुपचाप मेरे हवाले कर दो। इन्साफ यही कहता है कि कम्पनी के ऐजेन्टो, गुमाश्तो ने मेरी प्रजा से डरा धमका कर, छल कपट से जो मोटी-मोटी रकमे ऐंठी है, वह सब वापस की जाए।

वस्तुत मीर कासिम अग्रेजो से दो-दो हाथ करने का इरादा कर चुका था। उधर 7 जुलाई को पत्र मिलते ही अग्रेजो ने मीर कासिम से खुले तौर पर युद्ध करने की घोषणा कर दी। यह भी घोषणा की गई कि मीर कासिम की जगह मीर जाफर बगाल के नवाब बनाए गए हैं। अग्रेजो ने मीर जाफर के नाम पर सेना एकत्रित की और प्रजा से सहयोग देने को कहा जबकि दिल्ली के सम्राट की ओर से ऐसा कोई ऐलान नही किया गया था। बगाल के कम्पनी गवनर वन्सीटाट और काउसिल को सूबेदार बदलने, बनाने का कोई अधिकार न था, फिर भी ऐसा हुआ।

मीर कासिम की सेना मे करीब दो सौ [illegible] व ईसाई विभिन्न पदो पर थे। [illegible] सेना मे एक [illegible] भी था। उस देशद्रोही [illegible] इशारे [illegible] ज सैनिको को नवाब म [illegible] श्वासघा [illegible] ए पक्का कर [illegible] था।

मीर कासिम ने युद्ध के लिए उदवानाला नामक स्थान को चुना। यह जगह पूरी तरह से मीर कासिम के अनुकूल थी क्योंकि तीन तरफ से पहाड और नदी से घिरी थी।

मीर कासिम की सेना मे एक ऐसा अग्रेज भी था, जो पहले कम्पनी की सेना मे था। वह भी भेदिया वन गया। परिणाम यह हुआ कि अग्रेजो की चालवाजी, मक्कारी सफल हुई और ऊदवा-नाला के युद्ध मे मीर कासिम के एक दिन के युद्ध मे 15 हजार सैनिक मारे गए। यह घटना 4 सितम्बर 1763 की है।

इस तरह नवाब की सेना पर विजय पाने के बाद कम्पनी के अग्रेज, जो बगाल के वैधानिक शासक न थे, असली शासक बनने मे सफल हुए। मीर कासिम के शासन का अन्त हो गया।

निराश मीर कासिम मुगेर लौट आया और वहा के किले की मजबूती का इन्तजाम करके पटना की ओर चल पडा। उसके वहा से जाते ही मुगेर के किलेदार अरब अली खा ने अग्रेजो से रिश्वत लेकर वह किला अग्रेजो को सौंप दिया।

उधर आजमाबाद के किले के सरक्षक मीर मुहम्मद अलीखा ने अपने लिए अग्रेजो से पाच सौ रुपए मासिक पेंशन बधवा कर वह किला भी अग्रेजो के हवाले कर दिया।

अग्रेज मीर कासिम को किसी तरह गिरफ्तार करना चाहते थे ताकि उसकी कैद मे जो कुछ अग्रेज थे, उन्हे छुडाया जा सके। अग्रेजो ने कुछ सौदागरों और अपने ऐजेन्टो, गुमाश्तो के द्वारा मीर कासिम को पकडवाने की योजना बनाई, लेकिन वे कामयाब न हो सके।

अग्रेजो की सेना के पटना की ओर बढने पर मीर कासिम कुछ सेना और तोपखाने के साथ कमनाशा नदी (टोस) को पार कर 4 दिसम्बर 1763 को अपनी सीमा से पार नवाब शुजाउद्दौला के सूबे अवध मे चला गया। अवध मे प्रवेश से पूर्व नवाब मीर कासिम ने जिन विश्वासघाती अग्रेजो व हिन्दुस्तानी लोगो को तीन महीने तक अपने पास सुरक्षित रखा था, उन्हें कत्ल करवा डाला। इनमे खोजा ग्रिगरी, मिस्टर एलिस, जगत सेठ, उमका महाराजा स्वरूप चन्द आदि शामिल थे। मात्र एक अग्रेज

बाजार के समीप एमयाट को खाना खिलाने के बहाने नाव से उतारना चाहा लेकिन उसने इनकार कर दिया। दोबारा फिर एक अन्य कर्मचारी ने एमयाट से खाना खाने का आग्रह किया, वह फिर भी नही माना। अन्तत उसने मीर कासिम के आदमियो पर नाव से गोलिया बरसानी शुरू कर दी। तब कुछ लोग नाव द्वारा उसकी नाव तक पहुचे और एमयाट को मार दिया।

28 जून, 1763 को नवाब मीर कासिम ने वन्सीटार्ट गवर्नर और काउन्सिल के नाम एक पत्र भेजा, जो सात जुलाई को कलकत्ता पहुचा। उसमे मीर कासिम ने लिखा था—

—मिस्टर एलिस ने पटना शहर को लूटा और सैकडो लोगो की हत्यायें की। अच्छा हो कि नगर के लोगो का लूटा माल अंग्रेज वापस कर दें। आपने अपनी फौज के खर्च चलाने के लिए मुझसे इलाके लिए, जो मेरे विनाश की साजिश थी। अब उन इलाको को चुपचाप मेरे हवाले कर दो। इ साफ यही कहता है कि कम्पनी के ऐजेन्टो, गुमाश्तो ने मेरी प्रजा से डरा धमका कर, छल कपट से जो मोटी-मोटी रकमे ऐंठी हैं, वह सब वापस की जाए।

वस्तुत मीर कासिम अंग्रेजो से दो-दो हाथ करने का इरादा कर चुका था। उधर 7 जुलाई को पत्र मिलते ही अंग्रेजो ने मीर कासिम से खुले तौर पर युद्ध करने की घोषणा कर दी। यह भी घोषणा की गई कि मीर कासिम की जगह मीर जाफर बगाल के नवाब बनाए गए हैं। अंग्रेजो ने मीर जाफर के नाम पर सेना एकत्रित की और प्रजा से सहयोग देने को कहा जबकि दिल्ली के सम्राट की ओर से ऐसा कोई ऐलान नही किया गया था। बगाल के कम्पनी गवर्नर वन्सीटार्ट और काउन्सिल को सूबेदार बदलने, बनाने का कोई अधिकार न था, फिर भी ऐसा हुआ।

मीर कासिम की सेना मे करीब दो सौ अंग्रेज व ईसाई विभिन्न पदो पर थे। नवाब की सेना मे एक मिर्जा ईग्ज खा भी था। उस देशद्रोही ने अंग्रेजो के इशारे पर उन दो सौ अंग्रेज सैनिको को नवाब मीर कासिम से विश्वासघात करने के लिए पक्का कर लिया था।

बाजार के समीप एमयाट को खाना खिलाने के बहाने नाव से उतारना चाहा लेकिन उसने इनकार कर दिया। दोबारा फिर एक अन्य कर्मचारी ने एमयाट से खाना खाने का आग्रह किया, वह फिर भी नही माना। अन्तत उसने मीर कासिम के आदमियो पर नाव से गोलिया बरसानी शुरू कर दी। तब कुछ लोग नाव द्वारा उसकी नाव तक पहुचे और एमयाट को मार दिया।

28 जून, 1763 को नवाब मीर कासिम ने वन्सीटार्ट गवर्नर और काउन्सिल के नाम एक पत्र भेजा, जो सात जुलाई को कलकत्ता पहुचा। उसमे मीर कासिम ने लिखा था—

—मिस्टर एलिस ने पटना शहर को लूटा और सैकडो लोगो की हत्यायें की। अच्छा हो कि नगर के लोगो का लूटा माल अग्रेज वापस कर दें। आपने अपनी फौज के खर्च चलाने के लिए मुझसे इलाके लिए, जो मेरे विनाश की साजिश थी। अब उन इलाको को चुपचाप मेरे हवाले कर दो। इ साफ यही कहता है कि कम्पनी के ऐजेन्टो, गुमाश्तो ने मेरी प्रजा से डरा धमका कर, छल कपट से जो मोटी-मोटी रकमे ऐंठी है, वह सब वापस की जाए।

वस्तुत मीर कासिम अग्रेजो से दो दो हाथ करने का इरादा कर चुका था। उधर 7 जुलाई को पत्र मिलते ही अग्रेजो ने मीर कासिम से खुले तौर पर युद्ध करने की घोषणा कर दी। यह भी घोषणा की गई कि मीर कासिम की जगह मीर जाफर बगाल के नवाब बनाए गए हैं। अग्रेजो ने मीर जाफर के नाम पर सेना एकत्रित की और प्रजा से सहयोग देने को कहा जबकि दिल्ली के सम्राट की ओर से ऐसा कोई ऐलान नही किया गया था। बगाल के कम्पनी गवनर वन्सीटाट और काउन्सिल को सूबेदार बदलने, बनाने का कोई अधिकार न था, फिर भी ऐसा हुआ।

मीर कासिम की सेना मे करीब दो सौ अग्रेज व ईसाई विभिन्न पदो पर थे। नवाब की सेना मे एक मिर्जा ईरज खा भी था। उस देशद्रोही ने अग्रेजो के इशारे पर उन दो सौ अग्रेज सैनिको को नवाब मीर कासिम से विश्वासघात करने के लिए पक्का कर लिया था।

मीर कासिम ने युद्ध के लिए ऊदवानाला नामक स्थान को चुना। यह जगह पूरी तरह से मीर कासिम के अनुकूल थी क्योंकि तीन तरफ से पहाड और नदी से घिरी थी।

मीर कासिम की सेना मे एक ऐसा अग्रेज भी था, जो पहले कम्पनी की सेना मे था। वह भी भेदिया बन गया। परिणाम यह हुआ कि अग्रेजो की चालबाजी, मक्कारी सफल हुई और ऊदवा-नाला के युद्ध मे मीर कासिम के एक दिन के युद्ध में 15 हजार सैनिक मारे गए। यह घटना 4 सितम्बर 1763 की है।

इस तरह नवाब की सेना पर विजय पाने के बाद कम्पनी के अग्रेज, जो बगाल के वैधानिक शासक न थे, असली शासक बनने मे सफल हुए। मीर कासिम के शासन का अन्त हो गया।

निराश मीर कासिम मुगेर लौट आया और वहा के किले की मजबूती का इन्तजाम करके पटना की ओर चल पडा। उसके वहा से जाते ही मुगेर के किलेदार अरब अली खा ने अग्रेजो से रिश्वत लेकर वह किला अग्रेजो को सौंप दिया।

उधर आजमाबाद के किले के सरक्षक मीर मुहम्मद अलीखा ने अपने लिए अग्रेजो से पाच सौ रुपए मासिक पेंशन बधवा कर वह किला भी अग्रेजो के हवाले कर दिया।

अग्रेज मीर कासिम को किसी तरह गिरफ्तार करना चाहते थे ताकि उसकी कैद मे जो कुछ अग्रेज थे, उन्हे छुडाया जा सके। अग्रेजो ने कुछ सौदागरो और अपने ऐजेन्टो, गुमाश्तो के द्वारा मीर कासिम को पकडवाने की योजना बनाई, लेकिन वे कामयाब न हो सके।

अग्रेजो की सेना के पटना की ओर बढने पर मीर कासिम कुछ सेना और तोपखाने के साथ कर्मनाशा नदी (टोस) को पार कर 4 दिसम्बर1763 को अपनी सीमा से पार नवाब शुजाउद्दौला के सूबे अवध मे चला गया। अवध मे प्रवेश से पूर्व नवाब मीर कासिम ने जिन विश्वासघाती अग्रेजो व हिन्दुस्तानी लोगो को तीन महीने तक अपने पास सुरक्षित रखा था, उन्हे कत्ल करवा डाला। इनमे खोजा ग्रिगरी, मिस्टर एलिस, जगत सेठ, उसका भाई महाराजा स्वरूप चन्द आदि शामिल थे। मात्र एक अग्रेज

डाक्टर फुलस्टन को छोड दिया था।

यदि ऊदवानाला के युद्ध मे नवाब मीर कासिम विजय प्राप्त कर लेता तो ईस्ट इडिया कम्पनी के कब्जे मे बगाल मे एक फुट जगह भी शेष न बचती।

मालेसन लिखता है

मीर कासिम देशभक्त, प्रजाभक्त और इसाफ पसन्द शासक होने के साथ ही उदार भी था। उसने अपने दुश्मनो पर भी दया की। बहुत घिनौने काम पर ही षडयन्त्रकारियो को सजा दी। मीर कासिम मातृभूमि पर न्यौछावर होने वाला वीर था। हिन्दु-मुसलमान और अग्रेज, ईसाई सबके लिए उसके दिल मे जगह और प्रेम था, बशर्ते वह नीचता पर न उतरा हो।

ऐसा था नवाब मीर कासिम का चरित्र!

एक मुसलमान आजिम अली

बात जून, 1775 की है। महाराज नन्दकुमार पर अंग्रेजो ने जालसाजी के बीस आरोप लगाए थे। उनके विरुद्ध करीब तीन दर्जन गवाह जुटाए गए थे। उन्ही मे से एक आजिम अली भी था, जो कलकत्ता की नमक की कोठी पर एक अंग्रेज एजेन्ट का नौकर था। यानी आजिम अली उस अंग्रेज का खानसामा था। जब किसी पर नमक की चोरी का आरोप (जुर्म) लगाया जाता तो आजिम अली सरकारी यानी अंग्रेजो की तरफ से गवाही देता था। वह झूठी गवाही देने मे माहिर हो गया था।

महाराज नन्द कुमार, जो राजा थे और वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण, उन पर मुकदमा के पक्ष मे गवाहिया 3 जून से 12 जून, 1775 तक पूरी हुईं। सारे गवाह चाहे वे हिन्दु थे या मुसलमान, सबने करीब-करीब उनके विरुद्ध गवाही दी।

जब आजिम अली गवाही के कटघरे मे प्रविष्ट हुआ तो महाराजा नन्दकुमार और उनके सगी साथी समझ गए कि वह चश्मदीद अंग्रेज-गवाह बनकर आया है, इसलिए हमारे पक्ष मे गवाही देने का प्रश्न ही नही उठता।

जब आजिम अली कटघरे मे खडा था तो चैतन्य बाबू ने उसे सकेत से हाथ की एक, दो व तीन उगलिया दिखाकर तीन सौ रुपया तक देने का वायदा किया लेकिन शपथ लेकर वह कहने लगा—

—मैं महाराज नन्द कुमार का मकान जानता हू। उनके गुमाश्ता चैतन्य नाथ ने मेरी दुकान से एक जूता लिया था। मैं सन् 1769 की जुलाई मे चैतन्य बाबू से जूतो के दाम का तकाजा करने महाराज नन्द कुमार के मकान पर गया। उससे दस दिन पहले बुलाकीदास की मृत्यु हो गई थी। वहा चैतन्य बाबू काम मे

डाक्टर फुलस्टन को छोड दिया था।

यदि ऊदवानाला के युद्ध मे नवाब मीर कासिम विजय प्राप्त कर लेता तो ईस्ट इडिया कम्पनी के कब्जे मे बगाल मे एक फुट जगह भी शेष न बचती।

मालेसन लिखता है

मीर कासिम देशभक्त, प्रजाभक्त और इन्साफ पसन्द शासक होने के साथ ही उदार भी था। उसने अपने दुश्मनो पर भी दया की। बहुत घिनौने काम पर ही षड्यन्त्रकारियो को सजा दी। मीर कासिम मातृभूमि पर न्यौछावर होने वाला वीर था। हिन्दु-मुसलमान और अग्रेज, ईसाई सबके लिए उसके दिल मे जगह और प्रेम था, बशर्ते वह नीचता पर न उतरा हो।

ऐसा था नवाब मीर कासिम का चरित्र !

एक मुसलमान आजिम अली

बात जून, 1775 की है। महाराज नन्दकुमार पर अंग्रेजो ने जालसाजी के बीस आरोप लगाए थे। उनके विरुद्ध करीब तीन दर्जन गवाह जुटाए गए थे। उन्ही मे से एक आजिम अली भी था, जो कलकत्ता की नमक की कोठी पर एक अंग्रेज एजेन्ट का नौकर था। यानी आजिम अली उस अंग्रेज का खानसामा था। जब किसी पर नमक की चोरी का आरोप (जुर्म) लगाया जाता तो आजिम अली सरकारी यानी अंग्रेजो की तरफ से गवाही देता था। वह झूठी गवाही देने मे माहिर हो गया था।

महाराज नन्द कुमार, जो राजा थे और वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण, उन पर मुकदमा के पक्ष मे गवाहिया 3 जून से 12 जून, 1775 तक पूरी हुई। सारे गवाह चाहे वे हिन्दु थे या मुसलमान, सबने करीब-करीब उनके विरुद्ध गवाही दी।

जब आजिम अली गवाही के कटघरे मे प्रविष्ट हुआ तो महाराजा नन्दकुमार और उनके सगी साथी समझ गए कि वह चश्मदीद अंग्रेज-गवाह बनकर आया है, इसलिए हमारे पक्ष मे गवाही देने का प्रश्न ही नही उठता।

जब आजिम अली कटघरे मे खडा था तो चैतन्य बाबू ने उसे सकेत से हाथ की एक, दो व तीन उगलिया दिखाकर तीन सौ रुपया तक देने का वायदा किया लेकिन शपथ लेकर वह कहने लगा—

—मैं महाराज नन्द कुमार का मकान जानता हू। उनके गुमाश्ता चैतन्य नाथ ने मेरी दुकान से एक जूता लिया था। मैं सन् 1769 की जुलाई मे चैतन्य बाबू से जूतो के दाम का तकाजा करने महाराज नन्द कुमार के मकान पर गया। उससे दस दिन पहले बुलाकीदास की मृत्यु हो गई थी। वहा चैतन्य बाबू काम मे

मस्त थे। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया—इस समय महाराज एक जाली दस्तावेज बना रहे हैं, उसी काम मे मैं भी फसा हू। फिर मैंने महाराज को नाक पर चश्मा चढाए एक बक्से मे से 25 30 मोहर निकाल कर जोर-जोर से पढता हुआ सुना। उन्ही नामो मे एक नाम कमालुद्दीन का भी था। वह मोहर (कागज) महाराज ने चैतन्य बाबू को भी दिखाई थी।

आजिम अली की बयानबाजी को सुन सब सदस्य (जज) खिलखिला उठे और कहने लगे—गो आन। फिर आजिम अली ने कहा—हुजूर इसके बाद तमस्सुक की शक्ल के एक कागज पर वह मोहर छाप दी गई।

तब एक जज बोला—कहे जाओ, कहे जाओ।

आजिम अली बोला—इसके बाद महाराज ने चैतन्य बाबू से कहा—जहा मोहर लगाई है, उसके पास ही अब्दुल कमालुद्दीन का नाम भी लिख दो।

दूसरा जज—कहो, कहो!

तब चैतन्य बाबू ने कमालुद्दीन का नाम लिख दिया। आजिम अली बोला।

क्या तुम लिख-पढ सकते हो? तीसरे जज का प्रश्न था।

—हुजूर! अब तो आखो से कम दीखता है, पर पहले फारसी पढ लेता था। आजिम अली का जवाब था।

सर इम्पे बोले—आगे बोलो। इम्पे जूरी के जज थे। जूरी मे बारह जज थे।

हुजूर! फिर उसी कागज पर महाराज ने शिलावत सिंह, माधवराव के नाम भी गवाहो मे लिख दिए।

आजिम अली के बयान से घबरा कर चैतन्य बाबू ने आजिम अली को एक हजार रुपये देने का सकेत दिया। तब वह इशारे से ही बोला—घबराओ मत। सब पर पानी फेरे देता हू।

दूसरी तरफ जज और फरियाद करने वाले के वकील बेजार हो कहने लगे—गो ऑन, गो ऑन! (आगे कहो, आगे कहो)।

सब काम पूरा होने पर महाराज उस कागज को पढने लगे। आजिम अली ने आगे कहा।

सारे जजो ने पूछा—फिर क्या हुआ।

हुजूर! महाराज ने उसे पढकर फिर अपने बक्से मे रख दिया। तभी हमने सुना कि बुलाकीदास ने महाराज को तमस्सुक लिख दिया। फिर! फिर! एक साथ सारे जज बोले।

हुजूर! इसके साथ ही घर के अन्दर मुर्गी ने बाग लगा दी और मेरी नीद टूट गई। तभी मेरी छोटी बीवी ने कहा—मिया आज क्या बिस्तर से नही उठोगे? देखो! कितनी धूप चढ आई है?

तब ईलियट, जो द्विभाषिये का काम कर रहा था, तपाक से आह करके रह गया।

उधर जज इम्पे द्विभाषिये से आखिरी बात समझाने को कह रहा था और गवाह आजिम अली से गो ऑन (आगे कहो) भी।

हुजूर! इसके बाद मैंने अपनी छोटी बीवी से कहा—मैं ख्वाब मे महाराज नन्दकुमार के मकान पर गया हू और वे बुलाकीदास के नाम से एक जॉली दस्तावेज बना रहे हैं।

जब यह बात द्विभाषिये ईलियट ने जजो को समझाई तो सबके सब दग रह गए और निराश होकर आजिम अली का मुह ताकने लगे।

उधर आजिम अली 'गो ऑन' का इतजार किये बिना महाराज नन्दकुमार के अपराधो की सजा सुनाने को वहा बैठे जजो के सामने अपने ख्वाब का वर्णन करता चला गया।

यद्यपि न्याय का गला घोट कर महाराज नन्दकुमार को फासी दी गई, परन्तु आजिम अली ने वह करिश्मा कर दिखाया था जो उससे पहले किसी ने सोचा भी न होगा।

आजिम अली ने महाराज नदकुमार के विरुद्ध दी अपनी गवाही पर कुछ क्षणो मे ही जिस चतुराई से पानी फेर दिया था उसका मुख्य कारण कोई उसका व्यक्तिगत स्वाथ नही था, बल्कि राष्ट्र भक्ति से प्रेरित होना था।

महाराज नन्दकुमार को 14 अगस्त, 1775 को फासी दी गई थी। इग्लड लौटने पर सर इम्पे पर भी मुकदमा चलाया गया था और उसके फैसले को ब्रिटिश-न्याय को कलकित करने वाला बताया गया था।

शहजादा मिर्जा कैसर
मिर्जा महमूद

मिर्जा कैसर शाह आलम का बेटा यानी बहादुर शाह ज़फर का दादा था। सन् 1857 की प्रथम स्वतन्त्रता की लडाई के समय वह काफी बूढा था और हथियार चलाना तो दूर, चलना फिरना भी आसान न था। फिर भी अग्रेजो के पिट्ठ मिर्जा काले की बेसर पैर की बातों मे आकर बूढे मिर्जा कैसर को पकड लिया गया और उस पर गदर (स्वतन्त्रता सगाम) मे भाग लेने का आरोप लगाकर फासी दे दी गई।

इसी प्रकार गठिया के रोग से ग्रस्त अकबर शाह के पोते मिर्जा महमूद शाह, जिसके हाथ-पाव बिलकुल नकारा हो गए थे और जो एक स्थान से दूसरी जगह जाने मे भी असमर्थ था। यानी उसका सारा शरीर लुज पुज हो गया था, न जाने बद नसीब कसे जिन्दा था, को भी मुखबिर की चुगली के आधार पर गिरफ्तार कर फासी दे दी गई थी।

बीमार मिर्जा महमूद शाह की लाश को तुरन्त न दफनाकर सार्वजानिक स्थान पर लटका दिया गया और दिल्ली के लोग कई दिनो तक उस लटकती लाश को देखते रहे।

यद्यपि बूढे मिर्जा कैसर ने किसी अग्रेज महिला तथा बच्चे की हत्या नही की थी और न ही हथियार लेकर अग्रेजो के विरुद्ध जग लडी थी, फिर भी देशभक्त होने के जुर्म मे बूढे और बीमार शहजादा मिर्जा कैसर को फासी की सजा दी गई।

अब्दुल रहमान खा आदि नवाबो को फासी

दिल्ली के आस-पास करीब सात छोटी रियासतें थी जो दिल्ली के अधीन थी। यानी झज्जर, पाटौदी, दुजाना, लुहारी, बल्लभगढ, फरुखनगर, और बहादुरगढ।

इन रियासतो के नवावो ने भी सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता सग्राम (गदर) मे किसी न किसी रूप मे दिल्लो का साथ दिया था, लेकिन अग्रेजो के खिलाफ कोई भारी जुर्म या अपराध नही किया था। फिर भी उन पर जुर्म आरोपित किए गए और कई को जान और रियासत से हाथ धोने पडे।

झज्जर के नवाब अब्दुल रहमान खा पर आरोप लगाया गया कि उसने थ्यूफिलिस मेटकॉफ साहब को उस समय अपने यहा शरण देने से इनकार किया था जब वह जगे आजादी (गदर) के सेनानियो के चगुल से बचकर नवाब झज्जर के पास शरण लेने गए थे। एक दूसरा आरोप यह था कि उसने दिल्ली सम्राट बहादुरशाह को प्रार्थना पत्र (अर्जिया) लिखकर भेजे थे, इसलिए 1857 के 20 अक्तूबर को अग्रेज सेना झज्जर भेजी गई और नवाब अब्दुल रहमान खा को गिरफ्तार कर दिल्ली लाया गया। कुछ दिन लाल किले के दीवाने-आम मे कैद रखकर उस पर मुक-दमा चलाया गया और फासी दे दी गई तथा उसकी रियासत जब्त कर ली गई।

वल्लभगढ के हिंदु राजा नाहर सिह को भी फासी की सजा हुई थी। उस पर भी नवाब झज्जर की तरह के आरोप लगाए गए थे और वल्लभगढ को भी अग्रेजो ने अपने कब्जे मे ले लिया था।

फरूख नगर के नवाब अहमद अली खा को भी फासी दी गई और उसकी रियासत भी जब्त कर ली गई थी। उस पर भी उसी

तरह के बेहूदा आरोप लगाए गए थे, जैसे नवाब झज्जर और राजा वल्लभगढ पर लगाए गए थे।

लुहारी के रईस नवाब अमीन उद्दीन खा और नवाब जया-उद्दीन खा को भी कुछ दिन कैद रखा गया और मुकदमा चलाया गया। मुकदमे के दौरान अदालत मे उन्हे घटो खडा रखा जाता था। अन्तत सर जान लारस की कोशिश से इन दोना की जान व रियासत बच गई।

रियासत पाटौदी और दुजाना पर कोई जुर्म कायम नही किया गया तब भी उन्हे अग्रेजो की सरपरस्ती स्वीकार करनी पडी।

बहादुरगढ और दादरी के रईस बहादुर जग खा को फासी तो नही दी गई लेकिन उसकी रियासत जब्त कर ली गई और एक हजार रुपये मासिक पेंशन देकर लाहौर भेज दिया गया।

दिल्ली के ही एक रईस नवाब मुहम्मद हसन खा ने एक मेम (अग्रेज औरत) को अपने घर मे शरण देकर अग्रेजो के मुताबिक नेक काम किया था, लेकिन साथ ही उससे सभोग करके उसको गर्भवती भी बना दिया था। इसी अपराध मे मुहम्मद हसन खा को फासी पर लटका दिया गया।

अनेक मुसलमानो को इसीलिए फासी पर लटकाया गया कि उन्होने फोज की सी पोशाक पहन रखी थी, इसलिए वे अग्रेजा की निगाह मे बागी थे। आजादी के सिपाही थे, उन्हे फासी पर लटकाना जरूरी था।

महान् देशभक्त अजीमुल्ला खा

महान् देशभक्त अजीमुल्ला खा का राष्ट्र-प्रेम भी असदिग्ध था। सन् 1851 मे वाजीराव पेशवा की मृत्यु के वाद जब ईस्ट-इडिया कम्पनी सरकार ने उनके गोद लिए पुत्र नाना साहव को वाजीराव का उत्तराधिकारी मानने से इन्कार कर दिया और उन्हे उस आठ लाख रुपये सालाना मिलने वाली पेंशन से भी वचित, जो वाजीराव पेशवा को मिलती थी तो नाना साहव ने अपनी वकालत करने के लिए अपना राजदूत बनाकर अजीमुल्ला खा को ही इग्लैण्ड भेजा था।

सन् 1857 की क्राति के वह एक प्रमुख योधा थे और वह अन्त तक नाना साहब के अति विश्वास पात्र रहे। जब कानपुर बिठूर पर अग्रेज सेना को परास्त कर नाना साहब का शासन स्थापित हुआ था तो न्याय-व्यवस्था के लिए गठित न्यायालय का अजीमुल्ला खा को न्यायाधीश नियुक्त किया गया था।

देश भक्त अजीमुल्ला खा एक निधन परिवार मे पैदा हुए थे और उन्हे वचपन मे ही किसी अग्रेज के घर मे परिचारक के रूप मे नौकरी करनी पडी। वह बावर्ची का काम करते थे। वही रहते हुए उन्होने अच्छी अग्रेजी और फ्रेंच भाषाए सीख ली थी। वाद मे उन्होने अग्रेज की नौकरी छोड दी और कानपुर आकर विधिवत एक स्कूल मे शिक्षा ग्रहण की। फिर वह उसी स्कूल मे अध्यापक नियुक्त हुए।

जब उनकी असाधारण प्रतिभा की जानकारी नाना साहब को मिली तो उन्होने उन्हे अपने दरबार मे रख लिया। नाना साहव उनको प्रतिभा से इतने प्रभावित थे कि वह कोई भी काम उनकी सलाह लिए बिना नही करते थे। सन् 1854 मे नाना साहब ने उन्हें अपना राजदूत बनाकर इग्लैड भेजा था।

अजीमुल्ला खा चार महीने इग्लैंड मे रहे और उन्होने पूरी तरह कोशिश की कि नाना साहब को बाजीराव का उत्तराधिकारी मान लिया जाए, लेकिन काले मन वाले गोरी चमडी के अग्रेज टस से मस न हुए। इसके बाद देश भक्त अजीमुल्ला खा भारत वापस न लौटकर सीधे टर्की जाकर वहा के सुलतान से मिले। उन दिनो टर्की-रूस मे युद्ध चल रहा था। फिर भी अजीमुल्ला खा वहा से रूस गए और भारत से अ ग्रेजो को खदेडने के लिए वहा की सरकार से एक समझौता करना चाहते थे, जो सम्भव न हो सका।

रूस से कहा गए, किससे मिले यह साफ नही है। फिर भी कानपुर से जारी एक विज्ञप्ति के अनुसार वह मिस्र गए थे और वहा की सरकार से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित कर भारत से ईस्ट इडिया कम्पनी के शासन को समाप्त करने की योजना मे लिप्त थे।

आखिर वह कानपुर लौट आए और नाना साहब से कहकर उन्होने भारत के प्राय सभी नवाबो, राजाओ के पास दूत भेजकर क्राति सदेश पहुचवाया। अग्रेजो मे बार-बार युद्ध और नेतृत्व के अभाव ने नाना साहब को नेपाल मे शरण लेने पर विवश किया, लेकिन वह अग्रेजो के हाथ न लग सके। इसी क्रम मे देशभक्त अजीमुल्ला खा भी खप गए और छोड गए देश प्रेम की उज्ज्वल परम्परा।

अवध का वजीर

यद्यपि प्राय यह आरोप दोहराया जाता है, बल्कि बार बार कहा जाता है कि अवध की नवाबी को अग्रेजो ने उनकी विलासपूर्ण जिन्दगी के सहारे हथियाया। लेकिन अवध के वजीर (मत्री) अली नक्की खा कलकत्ता के समीप बैठे नाना साहब की तरह ही अग्रेजो के विरुद्ध क्राति की योजना बनाने मे व्यस्त थे। वह बगाल के सैनिको मे क्राति के बीज बोने के लिए फकीरो तथा सन्यासियो को भेजा करते थे। उन्होने अग्रेज सेना के भारतीय अफसरो को पत्र लिखकर कम्पनी सरकार की नौकरी के बजाय देश की आजादी को ज्यादा अच्छा बताया था और उन लोगो से कम्पनी सरकार की नौकरी छोडने का आग्रह किया था।

यानी जो बात मोहनदास करमचन्द गाधी ने सन 1920-21 मे कही, वह अली नक्की खा ने सन 1851 मे कह दी थी। उन्होने बगाल की सारी सेना मे विद्रोह फैला दिया था और कलकत्ता के विलियम दुर्ग तक मे अपने जासूस घुसा दिए थे। यह सारा काम गुप्त रूप से व्यापक तौर पर किया था वजीर अली नक्की खा ने, जबकि अग्रेजो की मक्कारी के जाल चारो तरफ बिछे हुए थे।

मौलवी अहमद शाह

मौलवी अहमद शाह फैजाबाद जिले के एक ताल्लुकेदार थे। उनकी सम्पति अग्रेजो द्वारा छीन ली गई थी। उन्होने कसम खाई थी कि वह केवल अपनी सम्पति ही वापस नही लेंगे, वरन देश को भी अग्रेजो से मुक्त करायेंगे। अपने देश और धर्म रक्षा के लिए वह मौलवी बन गए थे। उनका काम देश मे घूम घूम कर अग्रेजो के खिलाफ जनता के मन मे जागृति उत्पन्न करना था। वह जहा भी जाते, उन्हे सुनने के लिए भीड जमा हो जाती। अवध के राज दरबार मे उनका भारी सम्मान था। उनकी बात, सलाह को वेद वाणी या कुरआन की आयत माना जाता।

आगरा मे उन्होंने अग्रेजो के विरुद्ध एक गुप्त सगठन की स्थापना की थी। लखनऊ मे भी एक ऐसी गुप्त योजना तैयार की थी जिसकी फिरगियो को भनक तक न लग सकी थी। उन्होने अग्रेजो को देश से बाहर निकालने के लिए व्यापक जाल बिछाया था। साथ ही अग्रेजो के विरुद्ध पोस्टर, पुस्तिकाए लिख और छाप कर उन्हे जनता मे बटवाया था। एक हाथ मे तलवार और दूसरे मे कलम पकडे वह लगातार फिरगियो के विरुद्ध प्रचार करने मे लगे रहते।

मौलवी अहमद शाह की इस कार्यवाही से अग्रेज भयभीत रहते थे। अतत उन्हे गिरफ्तार करने का पुलिस को हुक्म दिया गया। लेकिन भारतीय पुलिस ने साफ कह दिया कि वह उन्हें गिरफ्तार नही कर सकेगी। अत मे एक अग्रेज फौजी टुकडी को उन्हें गिरफ्तार करने को भेजा गया। वह गिरफ्तार कर लिए गए और उन पर राजद्रोह का दावा करके उन्हे फासी की सजा सुना कर फैजाबाद जेल मे बन्द कर दिया गया।

मौलवी अहमद शाह को जेल भेजते ही सारा फैजाबाद नगर

और जनपद क्रांति की चिनगारियो से धधक उठा। सेना भी विद्रोह कर बैठी। जब अंग्रेज अधिकारी सैनिको को नियन्त्रित करने परेड मैदान गए तो सैनिको ने यह कहकर—हम सिर्फ भारतीय अफसरो के हुक्म के सिवाय किसी और का हुक्म नही मानेंगे, उनका हुक्म मानने से इनकार कर दिया और सूबेदार दिलीप सिंह को अपना नेता चुन लिया।

सूबेदार दिलीप सिंह के हुक्म से सारे अंग्रेज अधिकारी गिरफ्तार कर लिए गए और हुक्म दिया कि वे बारह कदम से आगे न बढें। उधर जनता व सैनिक जेल पहुचे और मौलवी अहमद शाह की बेडी हथकडिया काट कर उन्हे मुक्त करा लिया गया। वह क्राति के नेता घोषित कर दिए गए। उन्होने अपनी महानता का परिचय देते हुए घोषणा की कि सारे अंग्रेज नगर छोडकर चले जाए। इसी मे उनका भला है। यहा तक कि जिस कर्नल लेनोक्स ने उन्हें बन्दी बनाया था, उसे भी उन्होने माफ कर दिया।

इतना ही नही, मौलवी शाह ने अंग्रेजो को सामान तक ले जाने की अनुमति दे दी। घाघरा पार कराने के लिए नावो का इतजाम करवाया। उनकी सुरक्षा के लिए अपने सैनिक भी उनके साथ भेजे। लेकिन अंग्रेज जब नावो से घघरा पार कर रहे थे, तो सेना की 17 वी टुकडी के सैनिको ने उन पर हमला बोल दिया, जिसमे मुख्य आयुक्त गोल्डने, लेफ्टिनेंट थामस रिशी, मिल, एडवर्डस तथा करी आदि अधिकारी मारे गए। कुछ, जो बच गए थे, वे राजा मानसिंह के महल मे शरण—स्थान पा गए, जहा पहले से ही राजा मानसिंह ने सैकडो अंग्रेज महिलाओ व बच्चो को शरण दे दी रखी थी इस शर्त के साथ कि वहा कोई अंग्रेज पुरुष उनके मध्य नही रहेगा।

अन्तत अंग्रेज पुरुषो के वहा शरण लेने और शर्त टूटने पर क्रातिकारी वहा भी पहुच गए और उन सबको वहा से भी भागना पडा। कुछ रास्ते मे मारे गए। कुछ परेशानियो से मर गए। शेष बचे अंग्रेजो को गोपालपुर के राजा ने अपने घर मे शरण देकर बचा लिया। बाद मे उन्हे सकुशल अंग्रेजो के शिविर (कैम्प) मे भिजवा दिया गया।

उधर मौलवी अहमद शाह अपनी योजना को लगातार आगे बढा रहे थे। यद्यपि 1 अगस्त, 1858 को अग्रेजो की सेना की सख्या एक लाख से ज्यादा हो चुकी थी। सिख सैनिको के अतिरिक्त उनके पास 96 हजार सैनिक थे। अग्रेज अवध पर पुन अधिकार करने की शक्ति बटोर चुके थे और नई रणनीति अपना कर अपनी खोई प्रतिष्ठा को बहाल करने को व्याकुल थे।

अग्रेजो से टक्कर लेने प्रमुख क्रातिकारी—नाना साहब, मौलवी अहमद शाह आदि शाहजहापुर को अपना केन्द्र बनाए हुए थे। लेकिन अग्रेज सेना ने बरेली को अपना निशाना बनाया। एक दिन की टक्कर के बाद रणबाकुरे, अग्रेज सेना के काफी सैनिको को मार काटकर बरेली के शासक खा बहादुर भी क्रातिकारियो मे शामिल हो गए। अग्रेजो का दबदबा बढता जा रहा था, अत मौलवी अहमद शाह ने पोवेल के राजा जगन्नाथ सिह को एक पत्र लिखकर अपनी मदद करने का उनसे आग्रह किया।

राजा जगन्नाथ सिंह ने उत्तर मे लिखा कि वह उनसे(मौलवी से) मिलना चाहते हैं। मौलवी अहमद शाह जब उससे मिलने गए तो नगर के सभी मुख्य द्वार उन्हे बन्द मिले और सशस्त्र पहरे के बीच राजा जगन्नाथ सिंह अपने भाई के साथ खडा मिला। यद्यपि मौलाना अहमद शाह ने भाप लिया था कि शकुन अच्छा नही है फिर भी वह राजा के समीप चले गए। उस कायर, देशद्रोही ने मौलवी अहमद शाह का सर काट दिया और उसे एक कपडे मे लपट कर शाहजहा पुर मे अग्रेज अधिकारियो को उपहार की तरह भेंट कर दिया तथा बदले मे पचास हजार रुपयो की थैली लेकर अपने नगर लौट आया।

कई अग्रेज लेखको ने अपनी कलम से मौलवी अहमद शाह की उदारता, दयालुता और इन्सान परस्ती की तारीफ लिखी है। लेकिन एक क्रूर, दानव भारतीय के धोखे के शिकार होकर वह क्रातिकारियो, देश भक्तो के एक महान् प्रकाश स्तम्भ बने जो भारत के क्रान्तिकारी आदोलन के इतिहास मे सदैव चमकते रहेंगे।

देशभक्त मुहम्मद बखत खा

23 जून, 1857 के आस-पास जब दिल्ली के सम्राट बहादुर शाह जफर देश भक्त लोगो व सैनिको के साथ अग्रेज सेना से टक्कर ले रहे थे और सिख सेना द्वारा अग्रेजो का साथ देने के कारण अग्रेजो का हौसला बुलन्द हो गया था, ठीक उन्ही दिनो रुहेलखड की क्रातिकारी सेना की लगाम थामे देशभक्त मुहम्मद बखत खा दिल्ली पहुचा और उसने बादशाह जफर से उस सेना की सेवाए लेने की प्रार्थना की। सम्राट ने उसकी प्रार्थना को मानने के साथ ही, उसे सेनाध्यक्ष भी नियुक्त किया।

प्रधान सेनापति बनने के बाद मुहम्मद बखत खा ने सम्राट से कहा, यदि हमारा कोई भी नागरिक, यहा तक कि राज खानदान का व्यक्ति भी नगर (दिल्ली) मे लूटमार करता पाया गया तो उसे भी माफ नही किया जाएगा। सम्राट ने यह बात मानली और पूरे अधिकार बखत खा को दे दिए।

तीन जुलाई, 1857 को अग्रेज सेनापति बरनार्ड के नेतृत्व मे गोरी फौज और मुहम्मद बखत खा नेतृत्व वाली क्रातिकारी सेना के मध्य घमासान युद्ध हुआ और अग्रेज सेना को पराजय देखनी पडी, अत बरनाड को भारी धक्का लगा और हैजा होने से 5 जुलाई को उसकी मृत्यु हो गई। इस घटना के बाद जनरल रीड ने अग्रेजी सेना की कमान सम्हाली। चौदह जुलाई तक लगातार घमासान युद्ध चलता रहा। उसी दिन क्राति कारियो मे से किसी की गोली से एक अग्रेज योधा चेम्बरलेन की मौत हुई।

अग्रेज दिल्ली का घेरा खत्म करने की तैयारी मे थे कि इसी बीच अग्रेज अधिकारी बेयर्ड स्मिथ, जनरल विल्सन और सर लारेंस के साथ निकलसन के नेतृत्व मे दो हजार अग्रेज सैनिको के आने से स्थिति बदल गई। अग्रेजो मे उत्साह जागा और दिल्ली

का घेरा यथावत् बना रहा।

सम्राट बहादुर शाह जफर ने करीब दो दर्जन राजाओ, नवाबो को पत्र भेजे और भारत की आजादी के युद्ध मे भाग लेने का आह्वान किया, किन्तु सब व्यर्थ गया। इसी बीच क्रातिकारी सेनाए आपस मे ही मतभेदो मे उलझने लगी। सैनिक अधिक वेतन की माग करने लगे। सम्राट जफर ने सेनापति मुहम्मद बखत खा मे मत्रणा की तथा जन सभा में फैसला हुआ कि बिना युद्ध के हम दिल्ली को अग्रेजो के हवाले नही करेंगे।

बेयर्ड स्मिथ, जनरल रीड, निकल्सन, तथा विल्सन ने दिल्ली मे चार मोर्चे बनाए और अलग अलग मोर्चों का नेतृत्व करने लगे। 14 सितम्बर के घमासान युद्ध मे जनरल रीड मारा गया तथा निकल्सन मरणासन्न था। यानी चार मोर्चे खोलने, युद्ध लडने के पहले दिन अग्रेज सेना के तीन सेनापति आहत व 66 अधिकारी, 11 सौ सैनिक मारे गए। 24 सितम्बर 1857 तक दिल्ली का तीन चौथाई भाग अग्रेजो के कब्जे मे चला गया था।

सेनापति मुहम्मद बखत खा ने सम्राट जफर को दिल्ली से बाहर सुरक्षित भेजने और युद्ध लडने की सलाह दी, लेकिन विलासी और जर्जर सम्राट तैयार न हुआ। अन्तत जफर का आत्म समर्पण करना पडा और उनके तीन पुत्रो की हत्या कर दी गई। अग्रेज सेना के करीब चार हजार लोग मारे गए। करीब इतने ही क्रातिकारी सेना के लोग भी मारे गए। आजादी के लिए लडने वाली सेना ने लगातार 134 दिन तक अग्रज सेना का मुकाबला किया। बेचारे मुहम्मद बखत खा की वीरता भी दिल्ली को न बचा सकी, लेकिन अग्रजो ने उसके रण कौशल को मुक्त कठ से सराहा था।

जमादार वारिस अली पीर अली

बिहार का पटना नगर भी देशभक्तो का गढ था। वहा के पुलिस कमिश्नर टेलर को सब बातो का पता था। उसे तिरहुत जिले के पुलिस अधिकारी वारिस अली पर सदेह था, अत उसके घर पर घेरा डाला और तलाशी के बाद उसे गिरफ्तार कर लिया गया।

जिस समय वारिस अली के घर पर छापा डाला गया, उस समय वह गया नगर के एक क्रातिकारी नेता अली करीम को पत्र लिख रहे थे, जिसे अग्रेजो ने पकड लिया। उनका यह सन्देह पक्का हो गया कि वह क्रातिकारियो के साथ मिले हुए हैं और किसी भी समय हमारे (अग्रेजो के) खिलाफ मोर्चा सम्हाल सकते हैं, अत उ हे मृत्युदड की सजा दी गई और अनेक क्रातिकारी दबोच लिए गए।

क्या ऐसे देशभक्त, राष्ट्र प्रेमी वारिस अली को भुलाया जा सकता है? अग्रेजो की नौकरी मे होते हुए देशभक्त वारिस अली फासी के फन्दे पर झूल गए।

टेलर ने बडी अक्लमदी से काम लिया। पटना शहर के तमाम लाइसेंसधारी नागरिको को शस्त्र अस्त्र विहीन बना दिया। दानापुर, जो उन दिनो क्रातिकारी गतिविधियो का केन्द्र था, से भी पटना मे टेलर की कलाबाजी के कारण सकेत आने बन्द हो गए थे, अत घुट-घुट कर मरने की अपेक्षा नगर के क्राति कारियो और नागरिको ने 3 जुलाई, 1857 को अपने नेता पीर अली के घर मे बैठक की।

पीर अली मूलत लखनऊ के रहने वाले थे। लेकिन पटना जाकर पुस्तक विक्रेता के रूप मे स्थापित हो गए थे। देखने मे साधारण पीर अली का काम भी साधारण था, लेकिन वह महान्

देशभक्त, ओजस्वी वक्ता तथा लोगो को प्रभावित करने वाले थे।

पटना के क्रातिकारियो पर उनका बडा प्रभाव था। दिल्ली के क्रातिकारियो से भी उनके गुप्त सम्बन्ध थे। पीर अली ने टेलर के दमन के विरुद्ध सैकडो लोगो को शस्त्र सज्जित कर दिया और एक दिन अग्रेज दमन के खिलाफ हल्ला बोल दिया। असल मे वह जब किसी अग्रेज को देखते थे तो घृणा और क्रोध से भयकर हो जाते थे।

अन्तत पीरअली पकडे गए। तब उन्होने स्वय माना था कि मैं समय से पूव उबल पडा। पीर अली पर मुकदमा चला। हाथो मे हथकडी, पावो मे बेडी, साथ ही हाथो से खून का बहना और आखो को नजर आता फासी का फन्दा। लेकिन अदालत मे गोरे अधिकारी के सामने पीर अली ने कहा था—'तुम मुझे फासी पर लटका सकते हो, तुम मेरे जैसे अनेक लोगो को फासी का फदा उनके गले मे डालकर मार सकते हो। किन्तु तुम हमारे लक्ष्य, आदर्श की हत्या नही कर सकते। मैं मर जाऊगा, किन्तु मेरे रक्त से सहस्रो योधा जन्म लेंगे और तुम्हारे साम्राज्य को नष्ट कर देंगे।"

पीर अली फासी पर झूल गए। उनकी मृत्यु से दानापुर की छावनी मे क्राति की आग धधक उठी। सैनिको ने कम्पनी सरकार की वर्दिया फाड डाली और सेना छोडकर चले गए। जगदीशपुर के राजा कुवर सिह भी पीर अली की जगह आ खडे हुए और अग्रेजो के लिए महाकाल बन गए।

यह था पीरअली की मृत्यु यानी फासी पर झूलने का प्रभाव। ऐसे ही महान् देशभक्त क्रातिकारियो के बलिदान के फलस्वरूप अग्रेज भारत छोडकर गये और देश आजाद हुआ।

देशभक्त सआदत खा

एक जुलाई, 1857 को इन्दौर दरबार के एक दरबारी तथा देशभक्त सआदत खा ने भी इन्दौर रेजीडेंसी के अग्रेजो पर आक्रमण करने के लिए सेना को आदेश दिया था और साथ ही यह भी घोषणा की थी कि हमे महाराज होल्कर से अनुमति मिल चुकी है।

दरबारी सआदत खा की आज्ञा मिलने ही सेना ने स्वाधीनता की पताका थामे रेजीडेंसी पर गोलाबारी प्रारम्भ कर दी। रेजीडेसी के अन्दर भारतीय सेना को जब क्रांति के सैनिको पर जवाबी हमला करने का हुक्म दिया तो उसने (सेना ने) अपने भाइयो (क्राति सैनिको) पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया था।

रेजीडेसी के अन्दर कम्पनी सरकार के भारतीय सैनिको ने इतनी उदारता जरूर दिखाई कि किसी अग्रेज की हत्या नही की और उन्हे बोरिया-बिस्तर बाधकर वहा से जाने दिया। इस तरह दरबारी सआदत खा ने इन्दौर रेजीडेंसी को अग्रेजो से खाली करवा लिया था। महाराज होल्कर इस मामले मे इस कदर खामोश रहे कि भारत मे पूरी तरह अग्रेज-सत्ता कायम होने के बाद भी अग्रेज यह पता न लगा पाए कि सआदत खा के उस रेजीडेंसी आक्रमण मे होल्कर की भूमिका क्या थी ?

वस्तुत अग्रेज-रेजीडेंसी पर आक्रमण करना सआदत खा की अपनी सूझबूझ तो थी ही, साथ ही उनके देश-प्रेम की उत्कट लालसा ने ही उनसे यह भी कहलवाया कि महाराज होल्कर ने रेजीडेंसी पर आक्रमण की अनुमति दे दी है। इस तरह हम देखते हैं कि सन् 1725 से 1857 तक की आजादी की लडाई मे हिन्दुओ की अपेक्षा मुसलमानो की भूमिका ज्यादा और तीव्र रही है।

महान् क्रांतिकारी—अशफाक उल्ला खा

शाहजहापुर के एक सम्पन्न परिवार मे जन्मे क्रांतिकारी एव राष्ट्र भक्त अशफाक उल्ला वही के एक अग्रेजी स्कूल में नौवी कक्षा तक ही पढे थे। उनके दो बडे भाई रियासतुल्ला खा और शहन्शा खा थे।

क्रान्तिकारी स्व० रामप्रसाद बिस्मिल ने उन्हे आकर्षित किया। अशफाक उनके पास आने जाने लगे, लेकिन शुरु मे बिस्मिल अशफाक उल्ला को अविश्वसनीय समझ कर उनसे किनाराकशी करते रहे।

धीरे-धीरे अशफाक उल्ला ने बिस्मिल का विश्वास प्राप्त कर लिया और वह उनके दाहिना हाथ बन गए। बिस्मिल कट्टर आर्यसमाजी थे तो अशफाक उल्ला कट्टर मुसलमान। फिर भी बिस्मिल अशफाक को अपने सगे भाई की तरह समझ कर, एक ही थाली मे साथ साथ खाना खा लिया करते थे।

अशफाक बिस्मिल को राम और बिस्मिल अशफाक को कृष्ण कहकर पुकारते थे। एक साथ खाना-पीना और एक-दूसरे को राम कृष्ण के सम्बोधन से पुकारने के कारण कट्टर मौलवी अशफाक को काफिर कहने लगे थे।

अशफाक उल्ला दिल की बीमारी के मरीज थे। एक दिन जब उन्हें दिल का दौरा पडा तो वह हे राम, हे राम कहकर चिल्लाने लगे। घरवालों ने कहा—यह तुमने क्या बकवास लगा रखी है! खुदा का नाम क्यो नही लेते ? लेकिन अशफाक बराबर राम-राम चिल्लाते रहे। उनके एक पडोसी को मालूम था कि बिस्मिल को याद कर रहे हैं, अत वह फौरन रामप्रसाद बिस्मिल को बुला लाया। उन्हें देखते ही अशफाक बोले—राम, तुम आ गए!

तब घरवालो की समझ मे आया कि अशफाक इस राम को बुला रहा था और उनके दिमाग से अशफाक की काफिर होने की बात धुधली हुई। इसी मध्य अशफाक का दिल का दौरा थम गया और वह बिस्मिल के गले लिपट गये।

अशफाक उल्ला खा न तो धर्मान्ध थे और न उनके मन मे मन्दिर-मस्जिद के लिए किसी प्रकार का भेदभाव था। इस बात का सबूत, अशफाक द्वारा शाहजहापुर के एक आर्य समाज को जलाने, लूटने आई साम्प्रदायिक मुसलमानो की भीड पर पिस्तौल तानकर ललकारने की एक घटना से मिलता है।

बिस्मिल और अशफाक आर्य समाज मन्दिर मे किसी मत्रणा मे व्यस्त थे। उसी दौरान मुसलमानो ने मन्दिर पर हमला करना चाहा। जसे ही अशफाक को मालूम हुआ कि साम्प्रदायिक मुसलमान मन्दिर को जलाने लूटने, आए हैं, वह पिस्तौल तानकर बोले, "खबरदार! आगे मत बढना, नही तो एक-एक को गोली से भून दूगा। मुझे यह मन्दिर प्राणो से ज्यादा प्यारा है। मन्दिर-मस्जिद मे मैं भेद नही समझता। यदि लडना ही है तो बाजार मे जाकर लडो।" ऐसी थी अशफाक की इन्सानियत।

तब वहा आई मुसलमानो की भीड चुपचाप चली गई। उन दिनो शाहजहापुर मे हिन्दु-मुस्लिम दगे हो रहे थे और साम्प्रदायिक उन्माद उफान पर था। अशफाक ने इन्सानियत का रस पिलाकर उन्हें शात कर दिया था।

काकोरी डकैती काड के बाद अशफाक उल्ला खा भी फरार हो गए थे। फरारी के दिनो मे वह लाहौर भी गए थे। वहा वह प्रसिद्ध क्रातिकारी स्व० श्री केदारनाथ सहगल से मिले थे। श्री सहगल ने अशफाक से कहा, "यदि तुम हिन्दुस्तान की सीमा से पार काबुल जाना चाहते हो, तो मैं यह प्रबन्ध कर सकता हू।'

अशफाक उल्ला खा का जवाब था, "मैं हिन्दुस्तान से भागना नही चाहता, वतन के लिए किसी मुसलमान को भी फासी पर चढने दो भाई।"

अन्तत दिल्ली के एक होटल से अशफाक उल्ला को गिरफ्तार कर लखनऊ लाया गया और काकोरी काड के दूसरे मुकदमे मे फासी की सजा दी गई।

फासी से पूर्व 17 दिसम्बर, 1927 को जब अशफाक उल्ला खा के दोनो बडे भाई रियासतुल्ला खा और शहन्शा खा तथा अशफाक के दो भतीजे फैजाबाद उनसे मिलने गए तो अशफाक, जो शात मुद्रा मे थे, को देखकर रोने लगे, तब अशफाक ने कहा था, "हजेला साहब ! आप इन लोगो को क्यो लाए ? क्या यह रोने का समय है या खुश होने का ?

फिर अशफाक बोले, "मेरी सामने वाली कोठरी मे जो तीन कैदी हैं, उन तीनो को फासी की सजा हुई है। तीनो एक ही मा-बाप के बेटे हैं, सगे भाई हैं। डेढ सेर राब के झगडे मे इन्होने दो हत्यायें कर दी थी। ये तीनो डेढ सेर राब के लिए फासी पर झूलेंगे तो क्या मैं वतन की आजादी के लिए, अग्रेज सरकार के खात्मा करने की कोशिश मे फासी पर नही झूल सकता ? फिर ये लोग रोते क्यो है ?

फिर अशफाक ने कहा, "इन्हे समझाइए। हिन्दुओ मे खुदी राम बोस, कन्हाई दत्त जैसी हस्तिया मुल्क के लिए जान पर खेल चुकी है, बलिदान हो चुकी हैं। फिर मुसलमानो मे भी कोई ऐसा खुश नसीब होना चाहिए जो वतन के लिए जान पर खेले। शायद वह खुशनसीब मैं ही हू, जो क्रातिकारी होने के नाते फासी पर झूलुगा।

19 दिसम्बर, 1927 को फासी पर चढने के दिन अशफाक बेहद खुश थे। 18 दिसम्बर को उन्होने स्व० गणेश शकर विद्यार्थी को एक तार जेल मे भेजा था, जिसमे अपनी कब्र का पुख्ता करवाने की बात कही गई थी।

दरअसल अशफाक उल्ला खा ठाट बाट से रहते थे और किसी राजकुमार से कम न दीखते थे। शायद वह अपनी कब्र भी शानदार बनवाना चाहते थे, इसीलिए स्व० श्री गणेश शकर विद्यार्थी ने उनके (अशफाक) भाइयो को दो सौ रुपये भिजवाए थे, ताकि कब्र पक्की बन सके। अशफाक उल्ला का नाम भारत के उन महान् क्रातिकारियो मे से एक है, जिनका नाम भारत के इतिहास मे सदैव चमकता रहेगा।

कुछ और भी

देववन्द विचार के भारतीय मुसलमान काग्रेस समर्थक थे, तो अलीगढ विचार के साचे मे ढले भारत के मुसलमान काग्रेस विरोधी। कुछ ऐसे भी भारतीय मुसलमान थे, जिनका देववन्द-दारुल उलम से कोई वास्ता न था, फिर भी वे भारत की आर्थिक दुर्दशा और दासता से बेहद परेशान थे। ऐसे ही लोगो मे श्री वदरुद्दीन तय्यव जी का नाम प्रमुख है। वे काग्रेस के तीसरे अधिवेशन के सभापति वनाए गए थे। यद्यपि बाद मे वे अग्रेज-लाराच नीति मे फस गए थे। उन्होने अग्रेजो द्वारा विलायत से आने वाले कपडे पर से आयात शुल्क हटाने का डटकर विरोध किया था।

बाद मे वे वम्बई कौन्सिल के सदस्य चुने गए और फिर वबई हाई कोर्ट के जज नियुक्त किए गए। तव भी उन्होने लोकमान्य तिलक को जमानत पर रिहा कर दिया था। यह था उनका देश-प्रेम। वे राजनैतिक जागरण के साथ शिक्षा प्रसार और समाज-सुधार को भी समानान्तर बढने बढाने के प्रवल समर्थक थे। उनकी नसो मे शुद्ध अरव रक्त था। वे इग्लैड जाकर बैरिस्टरी पास करने वाले प्रथम भारतीय थे और अरबी, फारसी भाषा के विद्वान भी थे।

लन्दन मे ईस्ट इडिया एसोसियेशन के समक्ष भाषण देते हुए श्री बदरुद्दीन तय्यबजी ने कहा था—"मुसलमानो मे यह बडी कमी है कि जब कोई ऐसा दौलतमन्द मरता है जिसका अपना कोई नजदीकी रिश्तेदार नही होता तो वह अपनी सम्पति फकीरो को खिलाने, पुराने ढग के तालाब बनवाने, मक्का का हज करवाने या कुरान के पन्ने या इसी तरह की कोई पुस्तक बार-बार पढवाने के लिए वसीयत कर जाता है, जिससे देश का भला नही होता।

अपना धन खर्च करेगी।"

यह कथन स्पष्ट करता है कि श्री तय्यबजी रूढियो के सख्त खिलाफ थे और शिक्षा के फैलाव तथा समाज-सुधार के जबर्दस्त हिमायती। वे जीवन के अन्त तक देशभक्त और तरक्की पसन्द रहे।

मौलवी बरकतुल्ला, जो काबुल मे देवबन्द के क्रातिकारियो द्वारा स्थापित भारत की अस्थाई सरकार के होम मेम्बर थे, भी देशभक्त मुसलमानो की पहली कतार मे थे। श्री अली अहमद सिद्दीकी, जो अपने परिवार को बताए बिना एक मुसलमानो के मेडीकल मिशन के साथ टर्की चले गए थे, कम क्रातिकारी न थे। श्रीअली अहमद की तरह पजाब के एक मुसलमान भी भारत से अग्रेज हुकूमत को उखाडने के उद्देश्य से रगून से टर्की चले गए थे। उनका नाम था श्री अबू सैयद। इसी मौके पर टर्की की यग टर्क पार्टी ने जिस भारतीय मुसलमान को रगून भेजा था, उनका नाम था श्री कायम अली।

श्री अली अहमद सिद्दीकी ने भी यग टर्क पार्टी से नाता जोड लिया था। रगून मे अग्रेजो के विरुद्ध लडाई की जोरदार तैयारी चल रही थी। यही कारण था कि बर्मा गई हुई बलोच सेना के एक सिपाही ने एक अग्रेज अधिकारी को गोली का शिकार बना दिया था। वहा के क्रातिकारियो ने उस बलोच सेना से सम्पर्क बनाकर विप्लव की योजना तैयार की थी। बाद मे जनवरी 1915 में उस बलोच सेना ने अग्रेजो के खिलाफ खुली बगावत कर दी थी। अग्रेजो ने बलोच सेना के कुछ सैनिको को काले पानी भेजा था और कुछ को फासी पर लटका दिया गया।

मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कलकत्ता से 'अल हिलाल' एक पत्र भी इसी दौरान निकाला था, जो जन चेतना और अग्रेज घृणा का प्रचार करने मे उन दिनो सबसे आगे था। प्रतिक्रिया-वादी पत्र—'पायोनीयर' ने अल हिलाल के बारे मे लिखा था—अल हिलाल उर्दू का सचित्र साप्ताहिक कलकत्ते से निकलता है, जिसका सम्पादन अबुल कलाम नाम का दिल्ली का एक मुसल मान करता है। इस प्रात मे मुसलमानो के अन्दर इस पत्र की

बहुत बड़ी खपत है। शायद इसी प्रकार भारत के अन्य प्रातो मे भी होगी। जब से युद्ध आरम्भ हुआ है, तब से इस पत्र का रवैया, इतना उग्र, जमन पक्षीय है कि इसके पाठक इस पर आश्चर्य करते हैं कि सरकार इसमे छपे लेखो को कैसे बर्दाश्त कर रही है। आदि।

पायोनीयर की यह टिप्पणी लम्बी थी, जिसे सयुक्त प्रात के गवनर सर जेम्स मेस्टन के इशारे पर छापा गया था और कुछ दिनो बाद ही अलहिलाल साप्ताहिक का प्रकाशन रोक दिया गया तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद को गिरफ्तार कर लिया गया।

मौलवी मुहम्मद बरकतुल्ला, मौलाना मुहम्मद मिया अन्सारी, मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी, मौलाना हुसैन अहमद मदनी तथा हकीम नसरत हुसैन आदि देश भक्त मुसलमानो पर पूरी पूरी किताबें लिखी जा सकती हैं लेकिन पूरी जानकारी एकत्र करने के बाद। जानकारी मिल सकती है परन्तु परिश्रम और समय दोनो बहुत जरूरी हैं।

मौलाना हुसैन अहमद मदनी, मौलाना मुहम्मद-उल हसन की मृत्यु के बाद देवबन्द दारुल-उलूम के सातवें वली उल्लाई परम्परा के नेता बने। सर सय्यद अहमद जैसे अग्रेजो के क्रीत दासो ने वली उल्लाई परम्परा को बदनाम करने के लिए उसे वहाबी नाम दिया, जबकि शाह वली उल्ला और उनके साथी एव अनुयायी कट्टर देश-भक्त, हिन्दु मुस्लिम एकता परस्त थे। मानवता के हिमायती थे।

मौलाना मदनी जब मक्का, माल्टा आदि मे मौलाना मुहम्मद उल हसन के पास रहकर उनकी सेवा मे लीन थे, उसी दौरान उनका पूरा परिवार समाप्त हो गया था। लेकिन फिर भी वह देश प्रेम की गगा मे तैरते ही रहे थे।

सच तो यह है कि अग्रेजो ने तरह-तरह के लालच, कूटनीति और छल-प्रपचो के सहारे मुसलमान हिन्दुओ के बीच ही नहीं, वरन् मुसलमान मुसलमानो और हिन्दु हिन्दुओ के बीच भी फूट डालने की इतनी गहरी साजिश की थी कि भारत अनेक टुकडो

मे वटकर अपनी अस्मिता खो वैठता। भारत से जाते समय अंग्रेज छ सौ नवाबो, राजाओ को इस प्रकार की छूट देकर गए थे कि अगर लौह पुरुष सरदार पटेल जैसा व्यक्ति उस समय न होता तो हिन्दुस्तान की हालत फिल्म के गीत—इक दिल के टुकडे हजार हुए, कोई यहा गिरा, कोई वहा गिरा—जैसी हो गई होती।

तो सन् 1719 मे भारत के मुसलमानो ने पाकिस्तान लेने, की बात बिलकुल भी न सोची होगी। कमाल तो यह है कि इस्लाम के कायदे-कानूनो व नमाज सज्दा के पैरोकार मौलाना अबुल कलाम आजाद पक्के राष्ट्रवादी और हिन्दुस्तान की अखडता के जोरदार प्रवक्ता! लेकिन इस्लाम से दूर का वास्ता न रखने वाले मि० मुहम्मद अली जिन्ना मुसलमानो के लिए पाक-यानी पवित्र जगह की वकालत करने और जलालत वाले बैरिस्टर! जब सारा ही हिन्दुस्तान नापाक हो, तब उसका एक हिस्सा, टुकडा पाक कैसे और कहा से बना?

देश भक्त मुसलमानो के लिए पूरा हिन्दुस्तान ही पाक था। नापाक नही। दरअसल नापाक वे लोग थे, जो भारत भूमि के टुकडे कराने के जिम्मेदार हैं और वे भी, जो आज ऐसा सोचते है तथा ऐसी नीयत पर अमल कर रहे हैं। अथवा करवा रहे हैं।

□□

जन्म स्थान 15 अगस्त, सन 1922, ग्राम सु दरपुर (सडल) तहसील—ल स डाउन, जनपद—पौडी गढवाल (उत्तर प्रदश)

शिक्षा रुचि पजाब विश्वविद्यालय, लाहौर म सस्कृत साहित्य म शास्त्री एव हि दी म प्रभाकर उपाधि।

रचनाए अब तक—यक्ष-पुरुष कालिदास, प्रवचना (कविता), जिआ आर जीन दा, शनि की ढय्या (नाटक) सचाई की बल, राष्टीय-सस्कृति की कहानिया तथा बीस कहानिया, अवसरवादी बनो (व्यग्य निब ध), दवगिरि स हिमगिरि तक, एकता के चार अध्याय (निब ध सग्रह), कला वैभव अजन्ता एलारा (कला इतिहास), स्वाधीनता क पु ारी (सस्मरण), रघुवश के 13 व सग का भाष्य, तहजीब की शक्लें—रचनाए प्रकाशित। बचारा पजाब, पाचवा कण मुद्रणस्थ।

व्यवसाय सेवा 1952 62 तक स्व विद्यालय म अध्यापन, 1964 76 तक दनिक वीर अजुन म पत्रकारिता तथा 1978-84 जुलाइ तक दनिक हि दुस्तान म स्थानीय सम्वाददाता

सम्प्रति स्वतन्त्र लखन।